श्रीमद् हनुमच्चरित

- ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम'

शुद्ध हनुमच्चरित

[महावीर हनुमान का प्रमाणिक जीवन-चरित]

●

प्रणेता

आचार्य प्रेमभिक्षु वानप्रस्थ

[सम्पादक "तपोभूमि" मथुरा]

●

प्रकाशक

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा।

—※—

तृतीयवार २०००]   संवत् २०३१ [मूल्य ४) रु. मात्र

प्रस्तावना

किसी भी देश की समुन्नति और विकास में उसके गौरवपूर्ण अतीत का, उसके महिमामय इतिहास और साहित्य का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस तथ्य को जानकर ही चतुर अंग्रेज ने हमारे महान् राष्ट्र के प्रेरक और गर्वयोग्य इतिहास और साहित्य को योजनाबद्ध षड्यन्त्र के आधीन विकृत करने का दुष्ट प्रयास किया था।

आर्यसमाज के संस्थापक, महान् क्रान्तदर्शी, वेदोद्धारक ऋषि दयानन्द के इस देश, जाति मानवता पर जो असीम उपकार हैं उनमें से एक है अंग्रेजों की उक्त चाल के विफल करने के रूप में, भारतीय प्रजा को शुद्ध इतिहास ज्ञान की ओर उन्मुख करना।

स्वाधीन भारत में यह इतिहास शुद्ध या इतिहास की रक्षा का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व रखता है। कितने खेद और आश्चर्य का विषय है कि इस प्रश्न की गम्भीरता की ओर शासक दल के अतिरिक्त विरोधी दलों के राजनायिकों का भी अद्यावधि ध्यान तक नहीं गया है, इतना ही नहीं इसकी सबसे अधिक उपेक्षा की जा रही है। आज भी, भारत की स्वतन्त्रता के इस पैंतीसवें वर्ष में भी हमारे बच्चे पढ़ते हैं—(१) मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे। उनकी पूँछ घिसते-घिसते वे मनुष्य के रूप में आ गये। (२) आर्य भारत के मूल निवासी नहीं हैं। (३) भारत की प्राचीनतम द्राविड़ संस्कृति है। (४) आर्य लोग अग्नि, जल, वृक्ष आदि जड़ों की पूजा करते थे। (५) आर्य लोग माँस खाया करते थे मदिरा पान करते थे। (६) भारत के आदि निवासी असभ्य और जङ्गली थे, आदि २।

यदि हम थोड़ा गहराई से विचार करें तो हम यह जान सकेंगे कि हमारी आज की अनेक राष्ट्रीय समस्याओं के मूल में यह अशुद्ध इतिहास है घोर दुर्भाग्य का विषय है कि अंग्रेज ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को प्रयोग में लाते हुए हमारे इतिहास को बिगाड़ने का जो कुचक्र चलाया था, हम आज भी उसी पाप पूर्ण प्रपञ्च के शिकार हैं।

यों एक ओर हमारे इतिहास को विकृत करने में गौरांग महाप्रभुओं का हाथ रहा तो दूसरी ओर पौराणिक अन्ध युग में अपने ऐतिहासिक व्यक्तियों को अवतार की चादर ओढ़ाकर और उसे काव्यगत अलंकारों की पर्तों में ढककर रामायण-महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों को कोरे पूजा-पाठ की वस्तु बनाने का पाप किया गया ऐसा करते हुए इन इतिहास-ग्रन्थों में चमत्कारवाद का सहारा लेकर मनमानी मिलावटें करने से भी हमारे मध्यकालीन धर्मध्वजी पीछे नहीं रहे। शायद इसके गम्भीर परिणामों की ओर उनका कभी ध्यान भी नहीं गया होगा।

वीर पूजा (Hero worship) का भाव हर जाति में पाया जाता है और जाति-उत्थान एवं राष्ट्रोन्नयन के लिए अत्यावश्यक भी है, वह। पर जब इसे भी 'अति' की ओर ले जाया जाता है तो उन वीरों की पूजा अर्थात् उनके चरित्र का अनुशीलन करने, उनके पवित्र जीवन से प्रेरणा और प्रकाश लेने के स्थान पर, उनके चित्रों की पूजा चल पड़ती है। और इन चित्रों में भी काव्यगत अलंकारिक वर्णनों को सत्य घटनाओं के रूप में चित्रित करके 'अन्धश्रद्धा' का जो दौर चलता है उससे जाति-जीवन को स्फूर्ति मिलने के स्थान पर वह अतल तह में समा जाती है।

अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री 'लांगफ़ेलो' ने अपनी एक कविता—'सम आफ लाइफ' में लिखा है—

Lives of great men, all remind us.
We can make our lives sublime
And departing leave behind us,
Foot prints on the sands of time.

अर्थात् महापुरुषों के जीवन हमें प्रेरणा देते हैं कि हम भी अपने जीवन को (उन्हीं की तरह) उदात्त और आदर्श बना सकते हैं तथा संसार से कूच करते हुए समय की बालू पर अपने पद-चिन्ह छोड़ सकते हैं (ताकि पीछे आने वाली पीढ़ियां उनका अनुगमन कर सकें)

तो महापुरुष का प्रेरक जीवन ज्योति स्तम्भ का कार्य करता है। युगों-युगों तक पीछे आने वाली पीढ़ियाँ उनसे प्रकाश और प्रेरणा ग्रहण करती है। पर जब इन ज्योति स्तम्भों (प्रकाशकेन्द्रों) को 'अति श्रद्धा (अन्ध श्रद्धा) वश ईश्वर बनाने की कोशिश की जाती है, जब इन्हें अवतार बताकर अलंकारों और चमत्कारों से मढ़ने का उपक्रम किया जाता है, तो 'चरित्र पूजा' की जगह चित्र पूजा चल पड़ती है और घोर पतन की एक नई राह खुल जाती है।

हम भूल जाते हैं उस समय कि सत्य आधारित श्रद्धा जितनी ही कल्याण-कारिणी है, अन्ध श्रद्धा उतनी ही महानाशकारी। भगवान् श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण तथा महावीर हनुमान आदि को ईश्वर बनाकर और उसकी सिद्धि के लिए उनके जीवन के साथ अनेक बुद्धि-विरुद्ध और अवैज्ञानिक चमत्कार पूर्ण कहानियाँ घड़कर जहाँ अपने पूर्वजों के शुद्ध इतिहास को नष्ट करने का पाप किया गया है, वहाँ उन देव पुरुषों के साथ भी घोर अन्याय हुआ है, साथ ही अपने महा विनाश का मार्ग भी खुला है। अन्यथा जिस देश और जाति के पास रामायण और महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ हों, जिस जाति के पास राम, कृष्ण और हनुमान जैसे दिव्य आदर्श हों, वह जाति यों सदियों विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त होती, और वह राष्ट्र क्या आज भी कथित स्वतन्त्रता को पाकर भी बौद्धिक दासता की जंजीरों में यों बुरी तरह जकड़ा रहता ?

राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ के आद्य सरसंघ संचालक माननीय हेडगेवार के शब्दों में—"जहाँ कहीं भी कर्त्तव्यशाली या विचारवान् व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतार की श्रेणी में ढकेल देते हैं।........महान् विभूति को देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में। वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है किन्तु उसके गुणों के अनुकरण का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पर आने वाली जिम्मेदारी जानबूझ कर टाल देनेकी यह अनोखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपना ली है।

श्री भक्त रामशरणदास बड़े परेशान हैं, बाल योगेश्वर, बाल भगवान्, सत्य साईं बाबा, दादा लेखराज, आनन्द मूर्ति और हमारे मथुरा के ही एक और नये अवतार-पं० श्रीराम शर्मा आदि इन अवतारों की भीड़ से। उन्होंने इनकी आलोचना में लेख भी लिखे हैं। उनके मन के दर्द को हम समझ सकते हैं। गुरुडम और दम्भ का यह बढ़ता हुआ राष्ट्रघाती कुचक्र मिटना चाहिए। हमारे विचार में तो यह राष्ट्र-द्रोह तो कानूनन रोका जाना चाहिए। पर क्या कभी श्री भक्तजी महाराज ने यह भी विचारा है कि इस पाखण्ड और पाप की जड़ कहाँ है ? एक ही उत्तर है इस प्रश्न का-पौराणिक अवतारवाद !

लगता है जैसे भक्तजी का यह दर्द नये अवतारों की धूमधाम में पौराणिकता की पुरानी दुकान के उजड़ने के भय के कारण है। नहीं तो क्या श्री भक्तजी और उनके साथियों ने कभी विचार किया है कि अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रती, त्याग-तपस्या के मूर्तिमान, प्रतीक पाप-ताप-लंका-प्रज्वालक चारों वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, अद्वितीय नीतिमान्, अपूर्व साहस और शौर्य के धनी, महर्षि अगस्त्य के आदर्श शिष्य भगवान् राम के आदर्श मित्र और सेवक, माता अंजना और पिता पवन के आदर्श पुत्र, राम राज्य के संस्थापक अमर वैदिक संस्कृति के केतु वाहक वज्राङ्गी हनुमान जैसे राष्ट्रपुरुष को बन्दर बताना, वे बचपन में इस धरती से, १३ लाख गुने सूर्य को गाल में दे गये, ऐसे-ऐसे गपोड़ों को उनके महान् जीवन के साथ जोड़ अपने इस महान् पूर्वज ऐतिहासिकता को ही सन्दिग्ध बना देना क्या घोर राष्ट्र-द्रोह नहीं है ?

इस भीषण राष्ट्र-द्रोह से हम बचें !

हाँ, महावीर हनुमान को, मानव-कुल-भूषण, मूर्तिमान् क्षात्र-धर्म, राष्ट्र-पुरुष-राम, कृष्ण और हनुमान को अवतार बताना राष्ट्र द्रोह है-भीषणतम राष्ट्रद्रोह ! यह जहाँ सिद्धान्त: गलत है, वेद-विरुद्ध है, बुद्धि-विज्ञान-सृष्टि नियम और तर्क विरुद्ध है, वहाँ अपने इन महान् पूर्वजों को काल्पनिक, औपन्यासिक उपन्यासों के पात्र या अनैतिहासिक बताये जाने की पृष्ठभूमि तैयार कर स्वयं अपने पुरखों का ...

उज्ज्वल अतीत को मिटाने जैसा घोर पाप है, यह।

हमारे बन्धु, हो सकता है, हमारे ये शब्द आपको रुचिकर न लगें पर 'कड़वी भेजज के बिना मिटै न तन की पीर' के अनुसार इस कड़वी पर अत्यन्त हितकर औषध को आपको सेवन करना ही होगा हमारे धर्मबन्धु, झांझ पीटने की मस्ती में शायद आपको यह विचार नहीं हो पाता कि अपने ऐतिहासिक महान् आदर्शों को खोने या अपने ही हाथों मिटाने का दुष्फल यह है कि आज हमारे अपने घरों में विदेशी आदर्श स्थान पा रहे हैं। 'मम्मी और डैडी' के स्वर हमारे घरों में सुनाई पड़ रहे है, हमारे बच्चों को हिन्दी में पत्र-व्यवहार करना लज्जाजनक लगता है, हमारे निमन्त्रण-पत्र अँगरेजी में छपते हैं। गो मांस-भक्षण और अण्डे खाने के लिए दलीलें दी जाती हैं। यह सब क्या है ? विदेशी सभ्यताओं के योजना बद्ध हमले आज हमारी संस्कृति पर हो रहे हैं। क्या इस आत्म-पतन को प्रश्रय देना, आधार भूमि देना राष्ट्र-द्रोह नहीं है ?

भारत की मिट्टी में आक्रान्ताओं के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाले कम्यूनिस्ट, विदेशी ईसाई पादरी और मुस्लिम लीगी तत्व बढ़ रहे हैं। सावधान ! राम और हनुमान का जय घोष करने वालो चढ़ाओ प्रत्यञ्चा ! उठाओ अपनी सोई गदा ! राम और हनुमान वालो मत भूलो राष्ट्र को, राष्ट्र वालो मत भूलो राम और हनुमान को संस्कृति और राष्ट्रीयता अभिन्न हैं। धर्म और राजनीति अलग-२ नहीं। सदाचार ही सर्वोत्तम पूजा-पाठ है। स्वधर्म और राष्ट्रधर्म का समन्वय—यह वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक धर्म है। भोग और त्याग का समन्वय—श्रद्धा और विवेक, लोक और परलोक का समन्वय ही व्यक्ति और राष्ट्र जीवन का कल्याण-तीर्थ है।

आवश्यकता है, समय की माँग है कि हनुमान के भक्त भी हनुमान की भाँति ही 'ओं राष्ट्राय स्वाहा। इदं राष्ट्रीय इदम् न मम' का पाठ पढ़ते हुए व्यष्टि को समष्टि के चरणों में अर्पित करके सच्चे याज्ञिक (वैदिक समाजवादी) बन सकें और आत्म-द्रोह-जन्य अशान्ति की लपटों से झुलसे जा रहे विश्व को वैदिक संस्कृति का पावन पीयूष

मिला सकें, फिर एक बार धरा-धाम राम और हनुमान के जय-जय कार से गूँज उठे ! यही थी देव दयानन्द की कामना !

यह कामना कैसे पूर्ण हो, इसका एक अमोघ साधन है- इतिहास शुद्धि । महान् भारत का सम्पूर्ण 'शुद्ध इतिहास' हम शीघ्र ही प्रस्तुत कर एक दुःखद अभाव की पूर्ति के लिए आत्मना यत्नशील हैं इस बीच हमने देव दयानन्द के दिव्य स्वप्न को साकार देख पाने की भावना से भावित हो आर्य जाति के श्रेष्ठतम व्यक्तियों के शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त तथा कतिपय धार्मिक साहित्य के संशुद्ध रूप को प्रस्तुत करने का पुण्य प्रयास किया है । हमारी 'शुद्ध साहित्य सीरीज' में शुद्ध रामायण, शुद्ध महाभारत, शुद्ध कृष्णायन, शुद्ध गीता, शुद्ध मनुस्मृति; और शुद्ध तुलसी रामायण (मानस-पीयूष) के पश्चात् सातवां पुष्प है यह शुद्ध हनुमच्चरित । हमारे द्वारा प्रणीत एवं सम्पादित पूर्व छः पुष्पों का जिस उत्साह से भारतीय प्रजा ने स्वागत किया है, उससे प्रगट है कि हमारे स्वदेश बन्धुओं को जीवननिर्माण और राष्ट्रनिर्माण की सही दिशा की खोज है । हमें विश्वास है कि इस सप्तम पुष्प 'शुद्ध हनुमच्चरित' को निर्माण प्रेमी जनता और अधिक प्यार देगी ।

महावीर हनुमान के इस शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त से राष्ट्रोन्नति का एक दिव्य सूत्र मुख्य रूप से प्रकाश में आया है, वह है—'वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिता" (वेद) निसन्देह भारत-भाग्य निर्माण की दिशा में हमारे पुरोहित, हमारे उपदेशक, वैज्ञानिक, चित्रकार, कलाकार, आचार्य, अध्यापक, प्राध्यापक आदि सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकते हैं । हमारे विद्यालय ही हमारे राष्ट्रिय मन्दिर हैं वे श्रेष्ठतम पूजा-गृह हैं और कि राष्ट्र की नई पीढ़ी छात्रों के जीवन की डिजायन निर्मित करना श्रेष्ठतम प्रभु-पूजा और योग साधना है । आवश्यकता है हमारे आचार्य इसी भाव को लेकर कक्षाओं में प्रवेश करें और महामुनि अगस्त्य, वशिष्ठ और विश्वामित्र का अनुकरण करें ।

इतिहास अपने को दुहराता है (History repeats itself) किसी मनीषी का यह कथन सर्वथा सत्य है । वानर राष्ट्र में भी तब 'स्वराज्य' तो था किन्तु सुराज्य न था । राक्षसी सभ्यता जन्य बौद्धिक दासता

से राज्य जकड़ा था । ऋषि-मुनि कष्ट पा रहे थे । अपूज्यों की पूजा हो रही थी । वैदिक संस्कृति क्षीणमान हो चली थी । ऐसे समय महर्षि अगस्त्य ने राष्ट्रोद्धार के लिए राष्ट्र की नई पीढ़ीके निर्माण का बीड़ा उठाया था । महावीर हनुमान इसी नई पीढ़ी के प्रतिनिधि थे । आज भी, स्वराज्य है, सुराज्य नहीं । बौद्धिक दासता से देश विजड़ित है । है कोई महावीर जो राष्ट्रोद्धार व्रत में दीक्षित हो, है कोई मुनि अगस्त्य जो बौद्धिक दासता के उन्मूलन को जीवन-लक्ष्य बनायें । इसी प्रश्न के समाधान में उस गौरवपूर्ण युग की पुनरावृत्ति सम्भव है जब—

कहेगा जगत फिर से एक स्वर में सारा ।
वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा ॥

कृतज्ञता-प्रकाशन

'शुद्ध हनुमच्चरित' के प्रथम खण्ड में हमने उपन्यासों की शैली को अपनाया है । महर्षि वाल्मीकि विरचित महाकाव्य 'रामायण' से प्राप्त सूत्रोंके आधार पर ही इसका निर्माण हुआ है । यत्र-तत्र कल्पना का आश्रय भी हमने लिया है किन्तु उसमें भी ऐतिहासिक सत्यों की सम्पुष्टि की भावना ही प्रमुख रही है । महर्षि वाल्मीकि के सामने उदयोन्मुख राष्ट्र था । जनता में राष्ट्र-निर्माण की स्फुरणा उनका ध्येय था । ऋषि की वही भूमिका लेकर ऋषि की वही दृष्टि हमने जनता के सामने रखी है । द्वितीय खण्ड में यत्र-तत्र अध्यात्म रामायण और रामचरित मानस के उद्धरण भी 'हंस' वृत्ति को अपनाकर हमने दिये है । श्री चौहान सुखरामसिंह जी कृत 'हनुमान चरित्र' श्री पं० दुर्गाप्रसाद रचित 'हनुमान बन्दर थे या मनुष्य', 'रामायण के पात्र' तथा 'रामायण' (श्रीसातबलेकर) आदि से भी हमने आवश्यक सहयोग लिया है । उक्त सभी ग्रन्थ कर्त्ताओं के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं, और सर्वाधिक कृतज्ञ हैं हम परमेश ओ३म् के जिनकी कृपा और करुणा ही हमारे प्रत्येक क्रिया-कलाप का सम्बल है ।

मानवता का विनम्र सेवक—आचार्य "प्रेम भिक्षु"

नौ लाख वर्ष से और पहले........!

त्रेता और द्वापर युग का सन्धिकाल ! हाँ उससे भी पहली बात है। "गायन्ति देवा किल गीत कानि, धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।" कवि की यह भावनामयी उक्ति तब चरितार्थ हो रही थी। ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से हमारी यह माता सी प्यारी भारत माता विश्व गुरु के उच्च आसन पर आसीन थी, तो बल-गौरव और पराक्रम की दृष्टि से हम तब चक्रवर्ती सम्राट थे और भौतिक समृद्धि के विचार से इस पुण्य पावनी भरत-भू को 'सोने की चिड़िया" कहा जाता था।

भारतीय इतिहास के इस युग से हम "प्रागैतिहासिक' के नाम से परिचित हैं। किन्तु सच में इसे "वैदिक युग" की संज्ञा देना उपयुक्त है।

धार्मिक अवस्था

भारत ही नहीं सारे संसार का तब एक ही धर्म था—वैदिक धर्म। इसी का दूसरा नाम है मानवधर्म या विश्व धर्म। बहुत सारे मत-मतान्तर और मनमाने पन्थ तब नहीं थे। हम सबका, सारे संसार का तब एक ही धर्मग्रन्थ था—वेद। वेदानुकूल आचरण ही धर्म' और वेद-विरुद्ध आचार-व्यवहार की संज्ञा अधर्म थी। इसमें अन्धविश्वास, व्यक्तिपूजा, गुरुडम या पन्थाईपन के लिये कोई स्थान नहीं था। धर्म में तब श्रद्धा और विवेक (तर्क) अथवा हृदय और मस्तिष्क का समन्वय था। ज्ञान और विज्ञान अथवा धर्म और विज्ञान, लोक और परलोक, भाग्य और पुरुषार्थ, व्यष्टि और समष्टि तथा भौतिकता और आध्यात्मिकता के सुखद समन्वित मध्यम मार्ग पर चलकर तब सभी सुख-शान्ति का अनुभव करते थे।

अनेक ईश्वरों अथवा बहुदेवतावाद की छाया भी तब कहीं नहीं थी। एक सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, नित्य निरञ्जन, निर्विकार

अजन्मा न्याय-नियन्ता, सर्वव्यापक वैदिक ईश्वर का ही संसार उपासक था। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार उस एक ही परब्रह्म परमात्मा को गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, महादेव, नारायण आदि अनेक-२ नामों से मनीषी याद करते थे, और इस सचाई का ज्ञान सभी को था कि ईश्वर एक है और उसका मुख्य और निज नाम है–ओ३म्'। गुरुमन्त्र के रूप में भी तब सभी मानव-प्रजा एक मात्र—'गायत्री मन्त्र' का ही जप या अनुष्ठान करती थी।

अनेक-अनेक पूजा पद्धतियों का भी तब कहीं नामो निशान न था। पंच महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं भूत यज्ञ—के रूप में व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व मानव ही नहीं प्राणिमात्र के प्रति कर्त्तव्य पालन ही तब ईश्वर भक्ति का पर्याय था। मानव-पूजा या मानवता की उपासना ही सच्ची ईश्वर पूजा है, व्यावहारिक प्रभु भक्ति का यह रहस्य तब सभी को ज्ञात था।

यह वह स्वर्णिम काल था जब मनुष्य-मनुष्य के बीच न किसी प्रकार का रंग भेद था न देश भेद, न वर्ग भेद और न जन्मगत ऊँच नीच मूलक जाति भेद। "विजानीह्यार्यास्य ये च दस्यवः" इस वेद-व्यवस्था के अनुसार आचार और व्यवहार की दृष्टि से श्रेष्ठ, सदाचारी, वेदानुयायी धर्मात्माजनों की संज्ञा आर्य तथा उनसे इतर की अनार्य या दस्यु थी। यों सब मिलकर हम तब बड़ी गर्व भरी वाणी में कहते थे—

आर्य हमारा नारा है, वेद हमारा धर्म।
ओ३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म॥

सामाजिक अवस्था

उस स्वर्णिम युग में हमारी सामाजिक अवस्था या व्यवस्था का मूलाधार थी—वर्णाश्रम व्यवस्था। वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक धर्म समग्र और व्यावहारिक स्वरूप था। किसी भी राष्ट्र या समाज के के तीन महाशत्रु—अज्ञान, अन्याय और अभाव के सर्वनाश के लिये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का चयन गुण, कर्म और

स्वभाव के अनुसार गुरुकुलों में आचार्य द्वारा किया जाता था जिनमें में उक्त तीनों प्रकार की क्षमताओं में से कोई एक प्रकार की भी क्षमता नहीं होती थी उनकी संज्ञा 'शूद्र' होती थी। वे शारीरिक सेवा साधना द्वारा उक्त तीनों का सहयोग करता था। यही था सरल सा किन्तु राष्ट्र जीवन के लिए परम कल्याणकारी वैदिक वर्ण विभाग। इसमें किसी प्रकार की ऊँच-नीच या छोटे-बड़े की भावना व छाया भी नहीं थी। जन्म से इस वर्ण-व्यवस्था का कोई सम्बन्ध नहीं था। रुचि और क्षमता के अनुसार इसमें परिवर्तन भी होता था।

वर्ण-चयन के समय यज्ञोपवीत का धारण यज्ञीय या समाजिक जीवन की स्वीकृति का प्रतीक था। यह एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के ही समाजीकरण या राष्ट्रीयकरण का चिन्ह था।

वर्ण व्यवस्था समाज की सम्यक् व्यवस्था का नाम था और एक व्यक्ति के सफल शत वर्षीय जीवन की योजना का नाम था— आश्रम-व्यवस्था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की सम्यक् पालना करते हुए जब एक व्यक्ति इसे वर्ण व्यवस्था या राष्ट्र धर्म के साथ जोड़ता था तभी वह वर्णाश्रमी या वैदिक धर्मी माना जाता था। यों वैदिक धर्म मानव धर्म या राष्ट्रधर्म का मूलाधार था

"पुरन्धियोंषाम्" के रूप में नारी को राष्ट्रिय या सामाजिक जीवन का आधार माना जाता था। ऋषियों की भांति ऋषिकायें, वेद विदुषी देवियां और वीराङ्गनायें भी तब होती थीं। नारी के प्रति हेय भावना तो कहाँ पुरुष की अपेक्षा भी कई गुना गौरवपूर्ण दृष्टिकोण नारी के प्रति था। 'धन्यो गृहस्थाश्रमः', ज्येष्ठो गृहस्थाश्रमः' 'गृहिणी गृहं उच्यते' 'माता निर्माता भवति' आदि सूक्तियों में इसी गौरव की भावना निहित है।

वैदिक संस्कारों द्वारा जीवन को सुसंस्कृत करने तथा व्यक्ति को अधिकाधिक राष्ट्र-जीवन के साथ जोड़ने के लिये कुलगुरु या पुरोहितों की व्यवस्था होती थी, जिनका यह वैदिक उद्घोष होता था—"वयं राष्ट्रे जागयाम पुरोहिताः"

इन पुरोहित के संरक्षण में प्रशिक्षण प्राप्त बाल एवं युवा वृद्धों का सम्मान करते थे और वृद्ध जन उन्हें अपने आशीर्वाद एवं अनुभव पूर्ण मार्ग दर्शन में आगे बढ़ाते थे।

सम्पूर्ण मानवेतर प्राणियों की श्रेष्ठतम प्रतिनिधि के रूप में "गौ" को गौ माता कहा जाता था। वह प्रत्येक परिवार का अवि-
अस्तुद्विपदेश चतुष्पदे।' सभी जन गो दुग्ध एवं सात्विक भोज्य
भाज्य अङ्ग होती थी। वैदिक जन प्रभु से विनय करते थे—'शन्नो
पदार्थों का सवन करते थे। सभी निरामिष भोजी थे। किसी प्रकार की मादक वस्तु का नामोनिशान भी कहीं न था तब।

राजनैतिक अवस्था

राजतन्त्र और प्रजातन्त्र का समन्वित रूप था तब—इंलैण्ड की वर्तमान शासन-प्रणाली से कुछ-कुछ मिलता जुलता। सभा राजाधीन होती थीं किन्तु राजा भी सभाधीन होता था। वेदविद सदाचारी विद्वान् तथा वेदज्ञ सच्चे संन्यासी का स्थान सर्वोपरि होता था। "त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि" इस वैदिक व्यवस्था के अनुसार राज्य संचालन के लिए धर्म सभा, विद्या सभा और राज्य सभा की व्यवस्था रहती थी।

राजा अपने काल का सर्वाधिक महावीर होने के साथ ही वेद वेदाङ्गों का पण्डित, न्याय-धुरीण और धर्मात्मा होता था। 'मा अघ शंस ईशत' इस वैदिक सूक्ति में "पापी और अधर्मात्मा हमारा शासक न हो।" ऐसी प्रार्थना है। प्रजा-रञ्जन अथवा प्रजा का सर्वविध कल्याण ही राजा के निकट सर्वोपरि धर्म होता था। "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।" इन शब्दों में राजा की उसी प्रजा-हित-निष्ठा का चित्रण है। प्रजा भी राजा तथा राज्य के हितार्थ सर्वस्व निछावर करने को समुद्यत रहती थी।

आततायी को कठोरतम दण्ड तथा धर्मात्मा का सर्वविध संर-

क्षण और अभिवर्द्धन ही वैदिक राजनीति का मुख्य सूत्र था। "दण्डः शास्तिः प्रजा सर्वा। दण्डः धर्मं विदुर्बुधः" के अनुसार राजा का दण्ड काल रूप बनकर आतातायियों का प्राण-हरण करता था। महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में 'क्षत्रियैर्धार्यते चपं नार्त्त शब्दो भवेदिति' क्षत्रिय के धनुष धारण करने पर किसी आर्त्त या दुखी की करुणा भरी पुकार सुनने को नहीं मिलती थी। "आतातायी द्वारा एक गाल पर थप्पड़ मारने पर दूसरा गाल भी कर दो।" अथवा "कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोइ" अथवा "जो तोको कांटो बुवै ताहि बोइ तू-फल" ये भूल-भुलैयां वाले मोहक नारे संन्यासी या ब्राह्मण के निकट भले ही काम्य रहे हों. किन्तु राजा या क्षत्रिय के निकट तो यह "वर्ण संकरता" का ही द्योतक थे। वैदिक राजनीति में इस प्रकार की लंगड़ी (एकाङ्गी) या मिथ्या अहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं था।

छोटे-छोटे माण्डलिक राजा प्रायः एक सर्वोच्च सत्ता या चक्रवर्ती सम्राट् के सन्धि-विग्रह आदि कतिपय विषयों में अधीनस्थ होते थे। आन्तरिक पूर्ण स्वतन्त्रता उन्हें होती थी। अश्वमेध यज्ञ के रूप में चक्रवर्ती सामाज्य की संस्थापना का उपक्रम होता था। यह वैदिक साम्राज्य वस्तुतः सांस्कृतिक साम्राज्य या धर्म सामाज्य था। आधुनिक साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद से वह सर्वथा भिन्न था, जिसमें शासक और शासित जाति का भेद था शासित प्रजा के शोषण का कुचक्र चलता है। सच में राजनीति तब धर्म का ही एक अङ्ग थी। राजनीति का नाम तब 'राजधर्म' था। धर्म भी आज की भांति किसी विशेष प्रकार के पूजा-पाठ या गुरु, पीर, पैगम्बर या किसी ग्रन्थ विशेष की पूजा के रूप में किसी मत पन्थ या सम्प्रदाय के अर्थों में प्रयुक्त न होकर व्यक्ति. परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन अथवा विश्व मानवता की पूजा के रूप में ही प्रतिष्ठित था।

ऐसा था वैदिक युग. विश्व मानव के इतिहास का स्वर्ण युग! विद्या, कला, कौशल, कृषि और वाणिज्य के चरम उत्कर्ष से युक्त सरल जीवन, सरस जीवन, शान्त जीवन!!

रामायण काल

९ लाख वर्ष से कुछ अधिक ही हो गए जब भगवान रा
पृथिवी माता की हृदय रूपा इस भरत-भू पर विराजते थे। वैदि
काल की धार्मिक और सामाजिक विशेषतायें इस काल तक अवि
च्छिन्न रूप से चली आती थीं। कुछ राजनैतिक उतार-चढ़ाव अवश्
इस काल-खण्ड में दृष्टिगत होते हैं। रामायण की कथा में (१) दे
(२) आर्य (३) वानर (४) राक्षस—इन चार मानव वंशों का उल्ले
मिलता है। ये सभी आर्य जाति के ही विभाग थे। हिमालय के उत्त
में देवराज्य था. देवों के राजा का नाम इन्द्र, सभापति का वि
तथा सेनानायक का नाम शिव या रुद्र था। गङ्गा-यमुना के मैदा
और पंचनद प्रदेश में आर्य राज्य था। दक्षिण में वानर और राक्ष
राज्य थे। केन्द्रीय शासन (चक्रवर्ती शासन) इस समय उतना शक्ति
शाली न रहने से माण्डलिक सभी राजा उच्छृंखल-प्राय हो गये थे
शक्ति के मद में वे ऋषि मुनि, महात्मा और विद्वानों को कष्ट
और उनके आश्रमों को ध्वस्त करने लगे थे। यही कारण था महा
परशुराम को योग-साधना त्याग.धनुष धारण करना पड़ा। २१
उसने ऐसे उच्छृंखल क्षत्रिय शासकों का मद मर्दन किया इससे अत्या
चार तो अवश्य कम हो गये, किन्तु क्षत्रिय राजाओं का बल घट ग
अवसर पाकर वानर राष्ट्र और असुर राष्ट्र परस्पर मैत्री-सम्बन्ध
आधार पर अत्यधिक प्रबल हो गये। इनमें भी लंका के राक्षस रा
रावण के अत्याचार तो शक्तिवर्द्धन के साथ बहुत बढ़ गये। युग
माँग थी कि कोई सबल केन्द्रीय शासक पुनः चक्रवर्ती आर्य राज्य
स्थापना करे।

"ऋषियों ने अपना कर्त्तव्य अनुभव किया। एक ऐसे आर्य
को जन्म देने, उसे बहुविध प्रशिक्षण देकर तैयार करने का

सत्संकल्प किया। ऋष्य श्रृङ्ग के द्वारा 'पुत्रेष्टि यज्ञ' से लेकर महर्षि वशिष्ठ एवं महामुनि विश्वामित्र के प्रशिक्षण तथा अगस्त्त ऋषि के आश्रम-गमन तक आर्यवीर श्रीराम के निर्माण की यह प्रक्रिया सर्वथा मौनभाव से चलती रही। इधर मुनिवर अगस्त्य ने योजनाबद्ध रूप में वानर जाति की युवा पीढ़ी को भी ज्ञान विज्ञान के केन्द्र अपने आश्रम में दीक्षित किया। उन्हें राक्षस-द्रोह के भाव से भावित किया तथा देव और आर्यों के प्रति प्रेम भावना से संस्कारित किया। वानरजाति की इस युवा पीढ़ी के नायक थे, महावीर हनुमान। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रती रहकर श्रीराम के इस राष्ट्रोद्धार कार्य या चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य संस्थापन के कार्य में जो योगदान किया उसी से रामायण या रामचरित को वर्तमान रूप मिल सका। 'रामराज्य स्थापित हो सका। आदित्य ब्रह्मचारी महावीर हनुमान के नेतृत्व में वानर वीरों के बल-विक्रम और शौर्य से एक बार फिर धरती पर वैदिक युग साकार हो उठा। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

दोहा – वरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

(राम राज्य में) सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल 'स्वधर्म' में तत्पर हुए सदा वेद पथ पर चलते हैं, इसलिए सुख पाते हैं। (वेद पथ पर चलने के कारण ही) राष्ट्रवासियों को न किसी का भय है न शोक और न कोई रोग ही उनको सताता है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा ॐ राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ॐ चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

(इस प्रकार के वैदिक) राम राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापते। सभी मानव परस्पर प्रेम करते हैं और पवित्र वेदों में कही हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर सब अपने-अपने धर्म (वर्ण और आश्रम व्यवस्था के अनुसार अपने-अपने कर्त्तव्य) का पालन करते हैं।

अल्प मृत्यु नहिं कवनउ पीरा ॐ सब सुन्दर सब निरुज शरीरा।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना * नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।

(राम राज्य में वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से) न तो छोटी आयु में मृत्यु होती है और न किसी को कोई अन्य पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुन्दर और निरोग हैं। (वैदिक धर्म के पालन के कारण राम राज्य में) न कोई दरिद्र है न दीन-दुखी, न मूर्ख और न कोई शुभ लक्षणों से हीन ही है।

राम का वैदिक राज्य ठीक वैसा ही था, जैसा कि महाराज अश्वपति का। कितने आत्म विश्वास के साथ महाराज अश्वपति (वैदिक राष्ट्र के राष्टपति) कहते हैं—

नमः स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जनपद (राष्ट्र) में न कोई चोर है, न कंजूस और न कोई मादक वस्तु (बीडी, सिगरेट, भांग, तम्बाकू, शराब, अफीम और गाँजा आदि) का सेवन करने वाला। एक भी परिवार ऐसा नहीं है जहाँ अग्निहोत्र न होता हो। एक भी अविद्वान् =मूर्ख या गो० तुलसीदास के शब्दों में अबुध नहीं। एक भी व्यभिचारी नहीं फिर व्याभिचारिणी कहाँ? यह था वैदिक शासन या राम राज्य का आधार।

सब निर्दम्भ धर्म रत पुनी * नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनज्ञ पण्डित सब ज्ञानी * सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।

(अश्वपति की उसी घोषणा के क्रम में) राम के शासन में सभी दम्भ रहित हैं (कोई ढोंगी नहीं हैं) सभी धर्म-परायण और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ और धूर्तता से रहित हैं।

सब उदार सब पर उपकारी * विप्र चरन सेवक नर नारी
एक नारि व्रत रत सब झारी * ते मन बच क्रम पति हितकारी

(अश्वपति की उसी घोषणा के क्रम में) राम के शासन में सभी नर नारी उदार हैं (कोई कंजूस नहीं है)। सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों (सदाचारी विद्वज्जनों) के चरण सेवक हैं। सभी पुरुष एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार सभी स्त्रियां भी मन, वचन और कर्म से पति हित करने वाली हैं।

दो०—दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ॥

श्री राम के आदर्श वैदिक शासन में 'दण्ड' शब्द केवल सन्यासियों के हाथ से दण्ड के लिए प्रयोग में आता है। 'भेद' शब्द केवल नृत्य समाज में ताल स्वर के भेद के लिए प्रयुक्त होता है। और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई देता है। अर्थात् वैदिक राजनीति में दण्ड, भेद, साम और दाम आदि—चार उपाय शत्रु को जीतने तथा चोर डाकुओं आदि को दमन करने के लिए किये जाते हैं। पर राम के शासन में न कोई शत्रु, है न अपराधी। अतः 'भेद', 'दण्ड', 'जीतो' आदि का प्रयोग उक्त अर्थों में ही होता है।

फर्लहि फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।
कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा।

वनों में वृक्ष सदा फलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर को भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं। भाँति-भाँति के पशु समूह वनों में निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं।

लता विटप मागें मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ॥

बेलें और वृक्ष इच्छानुसार मधु (मकरन्द एवं औषधि आदि) देते हैं. गौयें मन चाहा दूध देती हैं। धरती सदा अन्न से भरी रहती है। त्रेता में ही सतयुग की करनी (स्थिति) हो गई है। वस्तुतः युग तो सभी समान हैं। काव्य में इन्हें मानवीय भावों का प्रतीक मान लिया है।

दोहा-विधु पूर महि मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
मांगें वारिद देंहि जल रामचन्द्र के राज ॥

श्री राम के राज्य में चन्द्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देता है। सूर्य उतना ही तपते हैं जितनी कि आवश्यकता है। मेघ मांगने से ही (अर्थात् जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं।

ऐसा था महिमामय वह रामायण काल !

संसार का इतिहास पढ़ने वाले कहते हैं कि वेदों के प्रचार हट जाने पर आर्य (हिन्दु) जाति को यदि किसी रसायन ने जीवित रखा है तो वह रामायाण है।

आर्य वंश के धर्म कर्म और संस्कृति का वह प्रवल प्रवाह, जिसने एक दिन जगत के बड़े-बड़े सन्मार्ग-विरोधी भूधरों का दर्प-दलन कर उन्हें रज में परिणित कर दिया था और इस परम पवित्र आर्य जाति का वह विश्व-व्यापक प्रकाश जिसने एक समय जगत में अन्धकार का नाम तक न छोड़ा था—अब कहाँ है ? इस गूढ़ एवं मर्मस्पर्शी प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि 'वह सब भगवान महा-काल के महापेट में समा गया।'

जो अपनी व्यापकता के कारण प्रसिद्ध था, अब उस गौरव का प्रकाश भारतवर्ष में आज कहाँ है ? बृहत्तर भारत, चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य इन शब्दों का नाम ही अवशिष्ट रह गया है। कालचक्र में बल, विद्या, तेज, प्रताप आदि सबका चकनाचूर हो चुका है पर इस अवस्था में भी उनके कुछ-कुछ चिन्ह वा नाम जो बना हुआ है यही डूबते हुए भारतवर्ष का सहारा है और यही वृद्ध भारत के हाथ की लकड़ी है।

जहाँ महा-महीधर लुढ़क जाते थे और अगाध अतलस्पर्शी जल था, वहाँ अब पत्थरों में दबी हुई एक छोटी सी किन्तु सुशीतल वारिधारा बह रही है, जिससे भारत के विदग्ध जनों के हृदय का यथा कथंचित् संताप दूर हो रहा है। जहाँ महाप्रकाश से दिग्दगन्त

उद्भासित हो रहे थे, वहाँ एक अन्धकार से घिरा हुआ स्नेह-शून्य प्रदीप टिमटिमा रहा है जिससे कहीं-कहीं भू-भाग प्रकाशित हो रहा है। वह है राम-चरित्र। 'राम-चरित्र' ही अब केवल हमारे संतप्त हृदय की शांति का आधार है और राम-नाम ही हमारे अन्धे घर का दीपक है।

यह सत्य है कि जो प्रवाह यहां तक क्षीण होगया है कि पर्वतों को उथल देने की जगह आप प्रतिदिन पाषाणों से दब रहा है और लोग इस बात को भूलते जा रहे हैं कि कभी यहां भी एक प्रबल नद प्रवाहित हो रहा था, तो उसकी आशा परित्याग कर देनी चाहिए। जो प्रदीप स्नेह से परिपूर्ण नहीं हैं तथा जिसकी रक्षा का कोई उपाय नहीं है और प्रतिकूल वायु चल रही है वह कब तक सुरक्षित रहेगा? (परमात्मा न करे) वायु के एक ही झोंके में उसका निर्वाण हो सकता है।

किन्तु हमारा वक्तव्य यह है कि यदि वह प्रवाह गंगा की निर्मल धारा की तरह बढ़ने लगे, तो सामर्थ्य है कि कोई उसे रोक सके? क्योंकि वह प्रवाह कृत्रिम प्रवाह नहीं है, भगवती वसुन्धरा के हृदय का प्रवाह है जिसे हम स्वाभाविक प्रवाह भी कह सकते हैं।

आर्य संस्कृति के जिस दीपक को हम निर्वाण-प्राय देखते हैं, निःसन्देह उसकी शोचनीय दशा है और उससे अन्धकार-निवृति की आशा करना दुराशा मात्र है, परन्तु यदि हमारी उसमें ममता हो और वह फिर सत्यता के स्नेह से भर दिया जाय जो स्मरण रहे कि यह दीप वही प्रदीप है जिसने कभी विश्व भर को आलोकित किया था।

कभी हम लोग भी सुख से दिन बिता रहे थे, कभी हम भी भूमण्डल पर विद्वान और वीर शब्द से पुकारे जाते थे, कभी हमारी कीर्ति भी दिग्दिगत व्यापिनी थी। कभी हमारे जय-जयकार से भी आकाश गूँजता था और कभी बड़े-बड़े सम्राट् हमारे कृपा-कटाक्ष की प्रत्याशा करते थे—इस बात का स्मरण करना भी अब हमारे लिए

दुस्साहस होता हैं। हम लोगों में भी एक दिन स्वदेशभक्त उत्पन्न होते थे, हममें सौभ्रातृ और सौहार्द का अभाव न था, गुरुभक्ति और पितृभक्ति हमारा नित्य कर्म था, आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य महाव्रती हममें होते थे। शिष्टता पालन और दुष्टदमन ही हमारा कर्त्तव्य था अधिक क्या कहें—कभी हम भी ऐसे थे कि जगत का लोभ हमें अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा सकता था।

महाराज दशरथ का पुत्र-स्नेह, श्रीरामचन्द्रजो की पितृ-भक्ति लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी भ्रातृ-भक्ति भरतजीका स्वार्थ-त्याग, वशिष्ठ जी का प्रताप, विश्वामित्र का आदर, ऋष्यशृंग का तप, जानकी जी का पातिव्रत, हनुमान जी का अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत और आदर्श सेवा भाव, विभीषण की शरणागति और रघुनाथ का कठोर-कर्त्तव्य किस को स्मरण नहीं है ? जो अपने 'रालचन्द्र' को जानता है वह अयोध्या मिथिला को कब भूला हुआ है। वह राक्षसों के अत्याचार, ऋषियों के तपोबल और क्षत्रियों के धनुर्बाण के फल को अच्छी तरह जानता है।

बस इसी शिक्षा को लक्ष्य कर हमारे समाज में 'राम नाम' का आदर बढ़ा। यह एक अकाट्य सचाई है कि ऐसा पावन और शिक्षाप्रद चरित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

हनुमच्चरित गौरवम्

यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि जिस राम नाम की ऐसी महिमा है, जिस राम राज्य का ऐसा प्रताप है और जिस राम चरित्र की ऐसी गरिमा है, उसके मूल में है महावीर हनुमान का अखण्ड ब्रह्मचर्य, अपूर्व तप और तितिक्षा, अनुपम शौर्य, अपार साहस, अद्भुत राजनीतिमत्ता और इन सबसे ऊपर निरभिमानता और सेवा साधना की अभूतपूर्व कहानी से युक्त पवित्र चरित्र !

मन्दिर का कलश हमें दीखता है, उसकी भव्यता पर हम रीझते हैं उसका यशोगान कर अघाते नहीं हैं किन्तु यह कलश जिस की साधना और तितिक्षा और सर्वस्व-बलिदान का परिणाम है, उस 'नीव के पत्थर को हम भूल ही जाते हैं। किन्तु हर्ष का विषय है कि न तो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने अपनी सफलताओं के मूला-धार और सेवाधर्म की प्रतिमूर्ति विप्रवर पवनसुत का मूल्याङ्कन कम किया और न कृतज्ञ स्वभावी भारतीय प्रजा ही महावीर हनुमान को भुला सकी है। समय के घात-प्रतिघातों के बीच भी भारतीय कवि कठों ने उनके गौरव को अक्षुण्ण रखा है। श्री राम का महावीर हनु-हनुमान लक्ष्मण और भरत की अपेक्षा भी जो इतना अधिक प्रिय है इसमें भी हनुमान चरित की गौरव गरिमा की स्पष्ट झाँकी मिल जाती है। आयें हम आगे के पृष्ठों में रामराज्य या चक्रवती आर्य साँस्कृतिक साम्राज्य के मूल संस्थापक महावीर हनुमान के चारु चरित्र में अवगाहन कर स्वयं को धन्य करें।

हनुमान तुम्हारी जय होवे !

—ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' एम० ए०

मनु-कुल में भानु समान हो तुम, हनुमान तुम्हारी जय होवे ।
असुरों के लिए कृसानु हो तुम, महावीर तुम्हारी जय होवे ॥
अंजना मातु हृद्-उजियारे, तुम पिता पवन नैनन तारे ।
हे ऋषि अगस्त्यके अमर शिष्य ! हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥१॥
हे ब्रह्मचर्य व्रत आराधक, आजन्म काम-रिपु संहारक ।
हे आर्य राष्ट्र उद्धारक ! महावीर तुम्हारी जय होवे ॥२॥
वानर-दल के अभिनव नेता, शत-शत संग्रामों के जेता ।
वेदज्ञ, महा पण्डित, चेता ! हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥३॥
हे प्राण-शक्ति के शुभ साधक, अध्यात्म-ज्योति के उन्नायक ।
शिव रूप तपस्वी योगेश्वर ! महावीर तुम्हारी जय होवे ॥४॥
पुण्यों के रक्षक महाबली, पापों के छलने हेतु छली ।
हे राजनीति-पण्डित महान ! हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥५॥
हे न्याय-नीति के संचालक, सुग्रीव-राम-मैत्री पालक ।
बन स्वयं पुरोहितवर प्रधान, महावीर तुम्हारी जय होवे ॥६॥
जानकी-विरह जल-पोत तुम्हीं, विद्रोह वह्नि के स्रोत तुम्हीं ।
लंका-जन हृदय प्रज्वालक हे ! महावीर तुम्हारी जय होवे ॥७॥
तुम भक्त विभीषण के त्राता, हे विजय-याग के उद्गाता ।
हे युवाशक्ति के यशोगान ! हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥८॥
संजीवनि औषधि संवाहक, हे राम सुयश के विस्तारक ।
लक्ष्मण नव प्राण-प्रदाता हे ! महावीर तुम्हारी जय होवे ॥९॥
लंका जीती, लंका जीती ! सीता लौटी सीता लौटी ।
इस कलरव के अधिकृत गायक ! हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥१०॥
हे क्रान्तिदूत, हे राम दूत, बन गये भरत हित अग्रदूत ।
हे सत्यपूत सेवक उदार ! महावीर तुम्हारी जय होवे ॥११॥
हे राम राज्य के निर्माता, युग-युग तव पावन यश-गाथा—
गाये जन मानस कर प्रणाम, हनुमान तुम्हारी जय होवे ॥१२॥

ओ३म्

शुद्ध हनुमच्चरित

[महावीर हनुमान]

: १ :

पूर्व वचन

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चः चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवा सहाग्निना ॥

—यजु० २०।२५

सामान्यतया मनुष्यों में बाहुबल और क्षात्रबल में से किसी एक बल की विशेषता होती है। कुछ विद्या के धनी होते हैं तो शारीरिक शौर्य से शून्य, दूसरे शारीरिक बल से युक्त होते हैं तो प्रायः विद्या से रहित। विरले जन ही होते हैं जो विद्या और बल दोनों की एक साथ उपासना करते हैं। वे ही पुण्य पुरुष हैं, वे ही आदर्श मानव हैं। देवत्व (ब्राह्मणत्व) और अग्नित्व (क्षात्र बल) का जिनके जीवन में सहचार होता है, वही देश और जाति का उन्नयन करने में अधिक समक्ष और समर्थ होते हैं। भगवान श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण एवं इस युग में महर्षि दयानन्द आदि की ही भाँति महावीर हनुमान भी ऐसे ही देव पुरुष हैं। वे जहाँ शौर्य और पराक्रम के क्षेत्र में आदर्श थे वहाँ योग विद्या, प्राण-विद्या और वेद-विद्या के भी महान धनी और व्याकरण शस्त्र के अद्वितीय पण्डित थे। महामानव, आदर्श प्रवीर हनुमान को ये दैवी गुण वंश परम्परा से मिले थे। उनके पूर्वज भी महान थे।

: २ :

हनुमान के पूर्वज

लगभग ९॥ लाख वर्ष हुए आर्यावर्त (भारत देश) में देव, आर्य वानर और असुर या राक्षस ये चार मानव वंश राज्य करते थे। वानर राष्ट्र का विस्तार वर्तमान आन्ध्र प्रदेश मध्य प्रदेश का कुछ भाग, मद्रास और उत्कल प्रदेश में था। वानर राष्ट्र का शासक बाली प्रबल प्रतापी और अद्वितीय शूर था। उसने एक बार राक्षस-राज रावण को भी हराकर ६ महीने तक अपनी कांख—अर्थात् आश्रय या कैद में रखा था। रावण ने बाली से मित्रता कर कतिपय स्थानों पर अपनी सैनिक छावनियां स्थापित की थीं। वानर राज्य के साथ सन्धि से रावण का बल बहुत बढ़ गया था। इन्हीं की सहायता से रावण ने देव राज्य के कोषाध्यक्ष कुबेर को कैदी बना उसका पुष्पक विमान छीन लिया था :

सम्पूर्ण वानर जाति क्षत्रियों की एक उच्चकोटि की जाति थी उनमें बड़े-बड़े शूरवीर राजे-महाराजे, बड़े से बड़े शिल्पी (इन्जीनियर) महा बलशाली शूरवीर, वेदों व व्याकरण के उद्भट विद्वान, वायुसेना के चालक और महायोगी विद्यमान थे।

यह जाति भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि भारत से बाहर भी संसार के सभी देशों में वर्मा, स्याम, मलाया इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, सिंगापुर, ब्रह्मपुत्र अर्थात् ब्रह्मा, बाली, रूस, गान्धार, (कन्धार) और आर्यान (ईरान) आदि-आदि में बसी हुई थीं।

वानर राष्ट्र की राजधानी किष्किन्धा (वर्तमान कर्नाटक) थी महाबली बाली की महारानी का नाम तारा था। वह परम सुन्दरी होने के साथ ही बड़ी ही विदुषी और अपने समय की राजनीति की महान् पण्डिता थी।

वानर वीर बड़े पराक्रमी, महान् साहसी उछल-कूद में अत्यधिक सक्षम और प्रायः बात के धनी होते थे। सरलता और सत्यता को वे अपना आभूषण मानते थे। इसी यशस्वी वानर राष्ट्र के अन्तर्गत कई छोटे-२ माण्डलिक राज्य थे। रत्नपुर और महेन्द्रपुर ऐसी ही दो माण्डलिक राज्य थे। महावीर हनुमान के पितामह प्रह्लाद विद्याधर अपनी शूरवीरता, धर्म प्रेम और विद्या-प्रेम के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे। श्री प्रह्लाद जी को उनके अतिशय विद्या-प्रेमके कारण ही विद्याधर की उपाधि मिली थी। श्री प्रह्लाद विद्याधर जी बड़े ही न्यायप्रिय, उदारचेता और प्रजा प्रेमी थे। कृष्णा और कावेरी के मध्य बसा यह माण्डलिक वानर राज्य विद्या, कला-कौशल और श्री समृद्धि की दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व रखता था। महाराज प्रह्लाद विद्याधर की महारानी केतुमती भी विदुषी और पति-परायणा देवी थी।

समय पाकर महारानी केतुमती के गर्भ से एक परम सुन्दर बालक ने जन्म ग्रहण किया। बालक की सुन्दरता जहाँ दर्शनीय थी वहाँ उसकी तेजस्विता और भी मनमोहक थी। बालक का समय पर वेद विधि से नामकरण संस्कार योग्य पुरोहितों के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। बालक के गुणों के अनुरूप ही उसका नाम 'पवन' रखा गया। सचमुच पवन आगे चलकर पवन (वायु) के तुल्य ही महाबली और तेजस्वी सिद्ध हुए। उनकी वीरता के कारण लोग उन्हें 'केसरी' कह कर भी पुकारते थे।

: ३ :

हनुमान के पिता केशरी पवनकुमार

राजकुमार पवन अब किशोर हो चले हैं। अपनी शालीनता और मिश्रित वीरता से उन्होंने प्रजाजनों का हृदय जीत लिया है। प्रत्येक मुख पर यही शब्द नाचते हैं—पवन ! वह तो एक होनहार युवक

है। वह वास्तव में पवन के ही समान है। जैसे वायु मनुष्य के प्राणों का आधार है, उसी प्रकार प्रजा के लिए पवन कुमार। दीन और दुखियों के लिए वह दया का भण्डार है, निराश्रितों का आश्रय दाता है और आतातायियों के लिए काल रूप है।

महर्षि अगस्त्य के आश्रम में विधिवत् वेद-वेदाङ्ग तथा क्षात्र धर्मोचित विद्या प्राप्त कर तरुण पवन ने कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया है। घुड़सवारी में वह अद्वितीय है। रणक्षेत्र में उसका घन-गर्जन शत्रु को कम्पायमान कर देता है. उसकी तलवार का लोहा सभी मानते हैं। सभा के मध्य शोभित युवा पवन नक्षत्रों में चन्द्रमा की भाँति सहसा सभी को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है। ब्रह्मचर्य साधना से दीप्तिमान राजकुमार पवन का मुख मण्डल, जिस पर सौन्दर्य और वीरता दोनों समङ्कित हैं, रत्नपुर की प्रजा के लिए नई आशा-ज्योति के तुल्य शान्तिदायक है।

ऐसे ही किसी एक दिन महेन्द्रपुरके राजा महेन्द्रराय के सुयोग्य मन्त्री ने राज्य सभा में प्रवेश किया। कुशल प्रश्नोत्तर के बाद मन्त्री महोदय राजा महेन्द्रराय की गुणनिधान, सुषमामूर्ति वीर पुत्री अंजना देवी का विवाह-सम्बन्ध राजकुमार पवन के साथ करने का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं। उन्होंने पवनकुमार के चित्र को लौटाते हुए, जिसे कुछ समय पूर्व महेन्द्रपुर के राजा द्वारा मंगाया गया था, अंजनादेवी का चित्र भी प्रस्तुत किया—साथ ही राजा महेन्द्रराय का निवेदन पत्र भी जिसमें अंजनादेवी के सौन्दर्य सुशीलता, सहिष्णुता, उदारता और परदुख-कातरता आदि नारी-सुलभ गुणों के साथ ही उसके अनुपम पाण्डित्य (विद्या) और वीरता आदि गुणों का भी विस्तार से उल्लेख था।

विद्या, विनय और शौर्य के प्रतिमान प्रह्लाद विद्याधर जी ने अपने मन्त्रि-परिषद् के परामर्श और अपनी विदुषी धर्मपत्नी महारानी केतुमती की सहमति के पश्चात् यह अनुभव कर कि रूप, गुण शील आदि सभी दृष्टि से अंजना देवी राजकुमार पवन के सर्वथा अनुरूप

है, अन्तिम स्वीकृति के लिए अंजना देवी का चित्र पवनकुमार को दिया। पवनकुमारी जैसे—राजकुमारके रूप और सौन्दर्य के सरोवर में डूब सा गया। यह तो वह भूल ही गया कि कभी आचार्य अगस्त्य मुनि के चरणों में उसने असुर राष्ट्र की पाप लीला और वानर राष्ट्र के स्वामी वाली के आतंक से जन-समाज की मुक्ति के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प भी लिया था। चित्रको अपने पिता को लौटाते हुए "मौनं स्वीकार लक्षणं" के रूप में उसने अपनी स्वीकृति दे दी। राजा महेन्द्र राय के मन्त्री स्वीकृति प्राप्त कर हर्षित मन महेन्द्रपुर लौटे और विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं।

: ४ :

पवन कुमार का शिवसंकल्प

आज दिन बड़ा सुहाना था। शौर्य और वीरता के धनी राजकुमार पवन एक हिंस्र जन्तु के पीछे शर-सन्धान किये दूर जंगल में निकल गये। वहाँ उन्हें ऋषियों के कुछ ध्वस्त आश्रमों के अवशेष दिखाई दिये और दिखाई दिया समीप ही महर्षि अगस्त्य का गुरुकुल विज्ञान आश्रम। और इसी क्रम में उन्हें स्मरण हो आया आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का सत्संकल्प। राजकुमार को याद आया कि जब वह गुरु चरणों में अध्ययन करता था तो किस प्रकार इन्हीं आश्रमों में से किसी एक आश्रम के रावण सेना द्वारा ध्वस्त किये जाने पर तपस्यालीन मुनिजनोंके शिरोच्छेदन करने पर उनके हाहाकार और चीत्कार से गुरुकुल वातावरण आतंकित हो उठा था। और तभी आचार्यप्रवर महामुनि अगस्त्य ने मुझे सर्वथा एकान्त में ले जाकर इस पापाचार के समूलोन्मूलन के लिए व्रत दीक्षा देते हुए कहा था मुझे आजन्मब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित कुछ जीवन चाहिए। और मैंने सहर्ष स्वीकृति दीथी।

आश्रम की ओर उसके बढ़ते चरण रुक से गये। उसकी आँखे खुली ही रह गयीं जैसे शून्य में कुछ खोजती हों मुख सूख गया चेहरा श्री-हीन और विवर्ण होगया। व्रत-भंग के विचार से लज्जाभिभूत हो

उठा, वह। पर तभी जैसे उसके ओठ बुदबुदा उठे—'मुझे आचार्य श्री के चरणोंमें उपस्थित हो, सब कुछ सत्य-२ निवेदन कर देना चाहिये' एक नूतन चेतना से पवन प्राणवान् हो उठा। निश्चिंत मन से उसने गुरुकुल—ऋषि आश्रम-में प्रवेश किया। महामहिम महर्षि अगस्त्य के दर्शन होते ही वह उनके चरणों में गिर पड़ा। ऋषि ने उसे हृदय से लगा लिया और अपने अन्तर का सम्पूर्ण प्यार उंडेलते हुए पूछा—वत्स! सब कुशल तो हैं?'

पर यह क्या, राजकुमार के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये! महर्षि ने उसे आश्वस्त किया—'पुत्र! क्या हुआ? तुम्हारी दिनचर्या तो ठीक चल रही है न? दैनिक वेदाध्ययन, सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र के साथ ही अतिथिपूजन और बलिवैश्व यज्ञ तो नियमित सम्पादित करते हो न? अनाथ-रक्षण और दरिद्र 'दुःख' भजन रूप विराट् प्रभु की सच्ची पूजा में कोई विघात तो उत्पन्न नहीं हुआ? रत्नपुर की प्रजा तो सुखी है तुम्हारे पूज्य पिता अपनी प्रजा के रक्षण को अपना सर्वोपरि धर्म मानते हैं? गौ आदि पशुओं का समुचित रक्षण तो होता है और फिर युवराज पवन के कान के बिल्कुल समीप अपना मुख ले जाते हुए महर्षि ने धीमे, शान्त और संयत स्वर में पूछा—वत्स! क्या असुर-विनाश विषयक तुम्हारे जीवन संकल्प का परिचय बाली या रावण आदि को तो नहीं होगया, जिससे किसी प्रकार से उन्होंने या उसके अनुचरों ने तुम्हें कष्टित किया हो? आखिर बात क्या है, सदैव विकसित पुष्प की भांति खिलते रहने वाले मेरे पवन के चेहरे पर यह उदासी क्यों? और कहते-कहते महर्षि अगस्त्य ने एक बार पुनः राजकुमार को अपने हृदय से लगा लिया।

इस बीच पवन संभल गया था। बड़ी विनम्र वाणी में उसने कहा—मेरे जीवन निर्माता गुरुदेव! मैं किस मुख से क्या कहूँ? ईश्वर कृपा और आपके मंगलमय शुभ आर्शीवाद से और तो सब कुछ ठीक है। मेरी दिनचर्या पूर्णतया वेदानुकूल है, महाराज-पूज्य पिताजी-भी सर्वथा वेद विहित विधि से राज्य-संचालन कर रहे हैं।

प्रजा—मनुष्य और पशु आदि भी सभी सुखी हैं। राक्षसराज रावण से तो महाराज बाली की मैत्री होने के कारण उनके द्वारा हमारे माण्डलिक राज्य में उपद्रव का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि पिताजी तो वानराधिपति बाली के अनुगत होने से राक्षस-शासन के सहायकों की श्रेणी में ही हैं। किन्तु ······किन्तु आज जब मैं एक वन्य और हिंस्र पशु का पीछा किये चला आ रहा था तो मार्ग में कुछ दूरी पर राक्षसराज रावण की छावनी दीख पड़ी और उसके समीप ही मुझे देखने को मिले ऋषि-मुनियों के वे आश्रम जो कभी ध्वस्त कर दिये गये थे। और तभी मुझे याद आया अपना जीवन-व्रत, आपके द्वारा प्रदत्त दीक्षा-संकल्प! पर······पर···आगे पवन कुछ कह न सका।

महर्षि अगस्त्य ने उसे पुनः ढाढस दिया—बोलो पुत्र! बोलो, निःसंकोच बोलो। पर···क्या हुआ? राजकुमार पवन ने तब बड़े भयार्त्त स्वर में कहा—'प्रभो! मैं आपका अपराधी हूँ। आपने मुझे राक्षस-विनाश के देव कार्य के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य व्रती होने की दीक्षा दी थी, किन्तु·······गुरुदेव राजा महेन्द्रराय की पुत्री अंजना के सद्‌गुणों की चर्चा सुन और उसका चित्र देखकर मुझे तो जैसे अपना जीवन-व्रत विस्मृत ही हो गया। मैं उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध की स्वीकृति दे बैठा हूँ। और आज जब उन ध्वस्त ऋषि आश्रमों का भयंकर दृश्य मुझे दीख पड़ा, तभी मुझे अपने शिव संकल्प का स्मरण हुआ और तभी से मेरा अन्तरात्मा मुझे धिक्कार रहा है।" यह कहते कहते युवराज अधीर हो उठा।

महर्षि यह वृत्त सुन एक बार तो स्तम्भित-प्राय हुए, फिर कुछ क्षणों के लिए ध्यानस्थ और तब एकबारगी ही उनके चेहरे पर मन्द मुस्कान खेल गई। युवराज पवन को सम्बोधित कर वे बोले—"सौम्य तुम्हारे लिए यों व्यग्र होने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम चाहो तो अपने वचन की पूर्ति एक अन्य अधिक उत्तम प्रकार से कर सकते हो।"

भगवन्! यदि ऐसा सम्भव हो तो तुरन्त निर्देश करें, तो मैं

किसी भी मूल्य पर वचन-भङ्ग के पाप से बचना चाहूँगा।" और तब उस महान् आचार्य ने अपने श्रद्धालु शिष्य की आँखों में आँख डाल बड़े स्नेहिल स्वर में कहा—"पवन, मेरे प्रिय पुत्र ! प्रभु जो करते हैं अच्छा ही करते हैं। तुम्हारी साधना और तप की क्षमता में मुझे अब भी पूर्ण विश्वाश है। पर प्रिय वत्स ! तुम्हारे इस व्रतानुष्ठान के पीछे केवल आचार्य की प्रेरणा और इच्छा शक्ति ही कार्य करती है, जब कि मनीषियों के अनुसार—"मातृमान पितृमान आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् किसी विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण मुख्यत: माता-पिता और अन्त में आचार्य की साधना की देन है। पर यहाँ तुम्हारे व्रत के सन्दर्भ में माता-पिता की मनोभावना का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः बहुत सम्भव था कि इस राह पर आगे बढ़ कर कहीं कोई फिसलन की स्थिति बनती। वह स्थिति निश्चय ही घोर दुर्भाग्य पूर्ण होती। तुम्हें अपने व्रत का विस्मृत हो जाना उसी का परिचायक है। अतः यह तो जो हुआ अति उद्यम ही हुआ। पुत्री अंजना के दैवीगुणों के विषय में भी मुझे परिज्ञान है। अतः अब अपने वचन की पूर्त्यर्थ तुम एक अभिनव और अधिक तपस्या साध्य अनुष्ठान कर सकते हो।'

पवनकुमार की जिज्ञासा पर आचार्य प्रवर मुनिवर अगस्त्य ने कहना प्रारम्भ किया—सौम्य ! तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारा विवाह सम्बन्ध एक सर्वगुण सम्पन्ना देवी अंजना के साथ होने जा रहा है। प्रिय पुत्र ! मैं चाहूँगा कि तुम इसे अपने राष्ट्र के सौभाग्य में बदल दो दोनों मिलकर तप करो। विवाह के उपरान्त तुम दोनों १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य की साधना करो। इस घोर तप के पश्चात् ही तुम्हें सन्तानोत्पत्ति की अनुमति मिल सकेगी। वत्स ! तुम्हारा विवाह संस्कार मैं स्वयं निष्पन्न कराऊँगा। पुत्री अंजना को तो तभी मैं तुम्हारा अनुव्रती बनने की सांकेतिक प्रेरणा करूँगा। वह निश्चय ही तुम्हारी योग्य और सर्वाधिक अनुरूप सहधर्मिणी सिद्ध होगी। और इस प्रकार तुम दोनों की इस दैवी साधना के पश्चात जो वीर सन्तान अंजना के

गर्भ से जन्म लेगी वह तुम्हारी अपेक्षा कहीं अधिक उत्तमता से तुम्हारे आजन्म ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन कर राष्ट्रिय कर्त्तव्य को निभा सकेगी। पुत्र ! क्या मेरा वह 'प्रायश्चत विधान' तुम्हें स्वीकार करते है ?"

पवन तो जैसे प्रसन्नता से उछल पड़े, ऋषि के प्रस्ताव पर। वे बोले—"देव ! आपने मुझ डूबते को बचा लिया। प्रभो ! आप धन्य हैं। अन्तरात्मा और परमात्मा की साक्षी में मैं वचन देता हूँ कि गृहस्थ में प्रवेश के १२ वर्ष बाद ही मैं सन्तानोत्पत्ति के लिए यत्नशील होऊँगा, तब तक मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।" और जैसे सम्पूर्ण वन प्रान्तर धन्य-धन्य कह उठा।* × ×

किसी सुदूर भविष्य की मनोरम कल्पना से ऋषि का अङ्ग-अङ्ग जैसे सिहर उठा। वे इतना ही कह सके—वत्स ! शायद तुम्हें ज्ञात हो अभी अयोध्या के चक्रवर्ती आर्य सम्राट् दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। मैं अभी-अभी उससे लौटा हूँ। राक्षसों के अत्याचारों से सन्तप्त ऋषि-मुनियों और देवों ने वहाँ एक सभा का आयोजन किया था। इन अत्याचारों को समाप्त कर धरती का भार हलका करने के लिए ऋषियों और देवों ने एक योजना बनाई है। इसी योजना के अधीन मुनिवर वशिष्ठ, पुत्रेष्टि यज्ञ विशेषज्ञ ऋष्यं श्रृङ्ग के तत्वावधान में अध्योध्या में महाराज के यहाँ यज्ञ रचायेंगे,

---

* योगेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी एक मात्र सहधर्मिणी देवी रुक्मिणी ने भी गृहाश्रम में प्रवेश के पश्चात १२ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन का ऐसा ही महान् घोर तप किया था। महाभारतकार के शब्दों में—

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं चीर्त्वा द्वादश वार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
समान व्रत चारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥३१॥

सौप्तिक पर्व अ० १२]

जिसके फलस्वरूप महारानी कौशल्या के गर्भ से एक महान् आत्मा जन्म लेगी, अन्य मातायें भी वीर पुत्रों को जनेंगी। इधर वानरों की यवा पीढ़ी तथा नई पीढ़ी के निर्माण का दायित्व मुझे सौंपा गया है। ×और तब कुछ देर मौन रह कर गम्भीर स्वर में ऋषिराज बोले—"प्यारे पुत्र! मेरी आँखें वह दिन देखने को उत्सुक रहेंगी जब मुनिवर वशिष्ठ और तपोनिष्ठ राजर्षि विश्वामित्र के नेतृत्व में निर्मित कौशल्या कुमार और मेरे संरक्षण में अभिवर्द्धित अंजनी पुत्र—दोनों का सहचार होगा, जब दोनों एक शक्ति बन आर्य राष्ट्र और वानर राष्ट्र को एक महाशक्ति का रूप देंगे और जब दोनों आसुरी लीला को समाप्त कर किष्किन्धा और लंका में धर्म राज्य स्थापित करेंगे।"

×दशरथ राजा के अश्वमेध में रावण का पाशवी बल पर अधिष्ठित साम्राज्य नष्ट करने का विचार देवों और ऋषियों ने मिलकर किया था, इस कार्य के लिए वहाँ एक स्वतन्त्र राजकीय परिषद् ही हुई थी, जिसका वर्णन इस तरह किया गया गया है—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन् सदसि देवताः॥
अब्रुवन् लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं ततः।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः॥
सर्वान् नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः।
उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान् द्वेष्टि दुर्मतिः॥
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति॥
ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणानसुरांस्तथा।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः॥
तन्महन्नो भयं तस्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात्।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि॥

(वा० रा० बाल० १५/४-११)

'देव, गंधर्व, सिद्ध, चारण, ऋषि, महर्षि आदि सब की यह परिषद्

ऋषि इतना कह मौन और ध्यानस्थ हो गये। बड़ी देर बाद जब उन्होंने नेत्र खोले तो अपने प्रिय शिष्य पवन कुमार को अपने चरणों में झुका पाया। पुलकित मन ऋषि ने आशीष दे युवराज को विदा किया।

× × × ×

: ५ :

पवन और अञ्जना का पुनीत परिणय

आज महेन्द्र नगर में बड़ी चहल-पहल है। युवराज पवन और देवी अंजना विवाह वेदी पर शोभित हैं। वेद मन्त्रों से और आदर्श महापुरुषों के चित्रों से अलंकृत विशाल यज्ञ मण्डप के ठीक मध्य में निर्मित यज्ञ वेदी की छटा अनुपम है। गुरुकुल के शतशः आचार्यों, उपाचार्यों, पुरोहितों ब्रह्मचारियों की समवेत वेदध्वनि एक अभिनव वातावरण की सृष्टि कर रही है। इतने अन्य सहायकों की उपस्थिति में भी आज आचार्य प्रवर महर्षि अगस्त्य ने स्वयं पुरोहित पद स्वी-

---

यहाँ लगी थी। सब इकट्ठे होने पर विचार करने लगे कि, रावण बड़ा प्रबल हुआ है, वह बड़ा उन्मत्त होने से सबको बड़े कष्ट देता है, उसका नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। इन्द्र को भी वह डराता है, ऋषि, यक्ष गन्धर्व, ब्राह्मण और असुरों को भी वह सताता है, सब उससे डरते हैं। ऐसे भयानक रावण का नाश करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए, इसका विचार इस परिषद् में किया गया।'

आगे इसी परिषद् में सबकी सम्मति से निश्चित हुआ कि सबने मिल कर संघ बनाकर रावण का वध करके सब जगत् को उसके भय से मुक्त करना योग्य है। इस कार्य की सिद्धि के लिए कौन क्या करे, यह भी यहीं निश्चित हुआ।

अश्वमेध जैसे राष्ट्रीय यज्ञ में राजकीय प्रश्नों का हल कैसे किया जाता था, इस को प्रत्यक्ष देखने के लिए यह प्रसंग अत्यन्त उपयोगी है।

कार किया है। दर्शकों के निकट अवश्य ही यह स्थिति एक अपवाद और विशेष कौतूहल पूर्ण है।

ईश प्रार्थना के पश्चात् मधुपर्क, गोदान एवं कन्यादान की विधियां सम्पन्न हुईं। अब वर और वरणी दोनों समवेत पाठ कर रहे हैं :—

समञ्जन्तु विश्वे देवा समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥

'हे सभा मण्डप में उपस्थित (उभय पक्ष के) महानुभावो ! आप हमें विवाह-सूत्र में आबद्ध होने की अनुमति इसलिए दीजिए। क्योंकि हम दोनों के हृदय दो विभिन्न स्थानों के जलों के समान सर्वथा एकीभूत हो गये हैं, संसार की कोई शक्ति उन्हें पृथक् नहीं कर सकती (२) क्योंकि—हम दोनों प्राण वायु के समान परस्पर एक-दूसरे की नितान्त आवश्यकता बन गये हैं तथा प्राण वायु के समान परस्पर हम एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। (३) क्योंकि विश्व विधाता प्रभु हम सबका जीवनाधार हैं, वैसे ही हम एक-दूसरे के जीवन का आधार हैं और (४) क्योंकि जसे सच्चा उपदेशक श्रोताओं का कल्याण करता है वैसे ही हम एक-दूसरे के कल्याण में नियोजित होने का संकल्प लिये हुए हैं।"

और तभी यज्ञ महिमार्थ एक परिक्रमा करने के प्रसङ्ग में देवी अंजना ने उच्चरित किया—

"ओं प्रमे पति यानः पन्थाः
कल्पतां शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयम्"

मुनिवर अगस्त्य थोड़ा मुस्कराये। बोले—पुत्री, अंजने ! समझा तुमने। प्रत्येक आर्य—श्रेष्ठ मनुष्य व्रती होता है। वह यज्ञ से उपवीत (समाज सेवा के व्रत में दीक्षित) होता है। अव्रती (व्रत-शून्य) मनुष्य पशु तुल्य है। वह आर्य नहीं दस्यु है। अज्ञान-नाश, अन्याय-नाश या अभाव-नाश में से किसी एक व्रत को आर्य—श्रेष्ठ मानव धारण करता है। यह व्रत ही उसका धर्म है। पत्नी-पति के इसी व्रत

की पूर्ति में सहायक बन सहधर्मिणी कहलाती है। पुत्री अंजने ! यहाँ तुमने प्रभु चरणों में विनय की है कि वह तुम्हें अपने प्रिय पति के जीवन-व्रत का अनुव्रती बनने, पति लोक या पतिव्रत का अनुसरण करने की शक्ति-भक्ति दे। पति के व्रत में सहायक बनने वाली देवियाँ ही पतिव्रता कहलाती हैं। पुत्री ! सच्चे हृदय से प्रभु स विनय करो, प्रभु तुम्हें अवश्य ही कर्तव्य-पालन की क्षमता प्रदान करेंगे।

एक अन्य मन्त्र के अन्तिम चरण—'वीर सूः देवृकामा" की व्याख्या में पुनः महर्षि ने देवी अंजना को सम्बोधित किया—'एक माता का मातृत्व तभी सफल है जब उसका पुत्र वीरहो। हाँ वीरता कई प्रकार की होती है—धर्मवीर, सत्यवीर, कर्मवीर, शूरवीर, दान-वीर आदि कई प्रकार के वीर होते हैं और प्रत्येक का राष्ट्र निर्माण में अपना विशिष्ट महत्व है। पर जब देश अन्याय-पीड़ित हो तब एक सच्ची माँ से कर्मवीर और शूरवीर सन्तान देने की अपेक्षा हो उसका समाज या राष्ट्र कर सकता है।" ×

राष्ट्रभृत होम, जया होम, पाणिग्रहण एवं लाजा होम विधि के पश्चात् जब सप्तपदी की महत्वपूर्ण विधि+ ऋषि सम्पन्न कराने लगे तो 'प्रजाज्यः पचपदी भव' की व्याख्या में वर वधू दोनों को सम्बोधित कर महर्षि ने कहा—'यहाँ सन्तान के लिए 'प्रजा' शब्द का प्रयोग है। 'प्रकर्षता पूर्वक जायते इति प्रजाः' जिसे माता-पिता प्रकर्षता पूर्वक—राष्ट्र की किसी विशेष आवश्यकता या अभाव की पूर्ति के रूप में पूर्ण मनोबल, साधना और तप के पश्चात् उत्पन्न करते हैं

× कवि का यह कथन कितना सार्थक है—
जननी जनै तो वीर जन, कै दाता कै शूर।
नाहिं तौ जननी बाँझ रह, क्यों वृथा गँवावै नूर ॥

+ गृहस्थ जीवन की सफलता के सात सूत्र इस विधि में बताये गये हैं। विस्तृत विवेचनके लिए संस्कार चन्द्रिका अथवा 'वैदिक धर्म की झाँकियाँ' (भाग २) या सुमङ्गली पढ़े।

उसे ही 'प्रजा' कहा जा सकता है। हमारा विश्वास है तुम दोनों अपने गृहस्थ धर्म का पालन इसी रूप में करोगे। इस सूत्र को भी नहीं भूलो कि अनेक अयोग्य सन्तानें उत्पन्न करने के स्थान पर एक गुणी और सुयोग्य सन्तान का निर्माण कहीं श्रेयकर है। और यह एक सद्गृहस्थ द्वारा राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।"❀

आशीर्वाद के साथ भी मुनिवर ने इसी प्रकार का मार्मिक सन्देश दिया। महर्षि ने संस्कार की सम्पूर्ण विधियों को इतनी तन्मयता से, इतनी सात्विकता से और इतनी भावनामयी शैली में सम्पादित कराया जिससे सभी चित्र लिखे से बैठे रहे। वर-वधू के साथ ही अन्य स्त्री-पुरुषों की आत्मायें भी संस्कारित और सुवासित हो रही थीं। संस्कार समाप्ति पर चतुर्दिक से धन्य-धन्य की ध्वनियाँ आ रही थीं।

× × × ×

: ६ :

परीक्षा की कसौटी

महाराज प्रह्लाद राय मगन मन पुरजन और परिजनों सहित पुत्र और पुत्रवधू को साथ लेकर रत्नपुर लौटे हैं। रत्नपुर की गली-२ मंगल-गानों और विजय वाद्यों से गूँज उठी है। 'वधू-स्वागत की मांगलिक बेला में देवों (विद्वानों=ब्राह्मणों) ने पुष्प वर्षा की। महारानी केतुमती ऐसी सर्वगुण सम्पन्न वधू को पाकर फूली नहीं समाती हैं।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन-यह क्या दिन पर दिन बीत रहे हैं, पर राजकुमार पवन के दर्शन भी देवी अंजना को दुर्लभ हो गये।

❀ एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारा सहस्रशः॥

[चा० नीति अ० ४ श्लोक ६]

उससे कोई अपराध बन गया क्या ? अंजनादेवी की चिन्ता स्वाभाविक थी। अपनी अभिन्न हृदया सखि वासन्ती (जो पितृगृह से उसके साथ ही आई थी) से उसने समाधान चाहा, पर व्यर्थ ! ठीक ऐसे ही क्षणों में दासी ने उसके भवन में प्रवेश किया और एक बन्द लिफाफा उसे ला थमाया। अंजना एक बारगी सिहर उठी हो जैसे, कम्पित करों से पत्र खोला। लिखा था –

"देवि सस्नेह.........!

अपने कठोर व्यवहार के लिए प्रथम ही क्षमा माँग लेता हूँ। मेरे इस प्रकार के व्यवहार से निश्चय ही तुम्हें अकथनीय कष्ट होगा। इसकी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि तो समय पाकर तुम स्वयंवाद में जान सकोगी इस समय इतना जानना पर्याप्त होगा कि एक आदर्श और वीर संतान की प्राप्ति हेतु हम तुम दोनों को १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रूप महान् तप की साधना करनी है। मैं इस व्रत में दीक्षित हूँ। तुम्हें याद होगा विवाह वेदी पर मुनिवर ने तुम्हें भी इसी व्रताचरण की संकेत रूप में प्रेरणा की थी।

देवि ! मेरी साधना स्खलित न हो इसी से १२ वर्ष तक हम लोग परस्पर नहीं मिलें, यह सरल मार्ग मैंने अपनाया है। मुझे विश्वास है, देवि ! इस साधना में तुम प्रसन्न मन मेरी सच्ची सहधर्मिणी सिद्ध होगी। — तुम्हारा कठोर हृदय —"पवन"

पत्र पढ़ते ही एक बार तो देवी अंजना संज्ञा शून्य हो गई उसे उसे लगा जैसे भूकम्प आ गया हो, सब कुछ घूम रहा हो, उनकी आँखों में अंधेरा छा गया। गिर ही जाती वह, यदि ठीक समय पर उनकी सखी वासन्ती ने उन्हें संभाला न होता। परन्तु यह स्थिति देर तक न रही। उनके धैर्य और कर्त्तव्य बुद्धि ने उनका साथ दिया। पत्रोत्तर में उसने लिखा—

"मेरे प्राण ! मेरे जीवन-सार !!

आपने स्वयं को 'कठोर हृदय' मान 'क्षमा याचना' ऐसे शब्द लिखकर अपनी ही जीवन सहचरी को अपराधिनी क्यों कर बनाना

चाहा है ? मेरे हृदय-धन ! मैं तो आपकी छाया मात्र हूँ। प्रभो ! आपके व्रत का अनुवर्त्तन ही मेरा सर्वोत्तम धर्म है। महर्षि ने हम लोगों को पात्र चुना है, १२ वर्षीय वियोग के आँसू पीकर भी हम गुरुदेव की कसौटी पर खरे उतर सके और उनके राष्ट्र-यज्ञ में सहभागी बन सके तो निश्चय ही यह हम लोगों का परम सौभाग्य होगा। आप मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें, परमेश प्रभु आपकी साधना सफल करें। एक भारतीय नारी यही कामना कर सकती है। हाँ, १२ वर्ष बाद १ दिन भी आपके दर्शन न मिलने की स्थिति मेरे निकट असह्य होगी।

आपकी छायानुगामिनी..........अंजना।

× × × ×

'समय जात नहिं लागहिं वारा' और समय जाते देर नहीं लगी एक-एक करके ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये। बारहवाँ वर्ष भी समाप्ति की ओर जा रहा था। केवल २-२।। महिने शेष थे कि राज्य के एक भाग में विद्रोह की सूचना मिली। महाराज जब स्वयं उसके दमन के लिए जाने को समुद्यत हुए तो युवराज पवन ने विनम्र स्वरमें निवेदन किया –"महाराज ! मेरे रहते आपको जाने की आवश्यकता नही है। मैं शीघ्र ही उपद्रवकारियों का दमन कर आपके चरण दर्शन करूँगा।"

पवनकुमार को आशा तो यही थी कि वह महीने-पन्द्रह दिन में ही रत्नपुर लौट आयेंगे, किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका। यह विरोध वानर जाति की युवा पीढ़ी की ओर से था जो महाराज बाली और उनके अधीनस्थ माण्डलिक राजाओं द्वारा रावण का सहयोग करने के पक्ष में नही थी। हृदय से तो युवराज पवन भी इन्हीं के साथ थे, पर महाराज पर अभी इस रहस्य को प्रकट नहीं करना चाहते थे। वह द्विविधा में फँस गये। वे दण्डित करने के स्थान पर युवा पीढ़ी को समझा-बुझाकर ही शान्त करने का यत्न करते रहे, यों उन्हें समय अधिक लग गया।

आज पवनकुमार के विवाह को १२ वर्ष पूरे हो गये। साधना

पूर्ण होगयी । पर आज भी राजकुमार पवन देवी अंजना के पास नहीं पहुँच सके थे । दिन ढलने लगा । सूर्य देवता अपना राज्य चन्द्रदेव को सौंप चले गये । सैनिक सो गये । राजकुमार की आँखों में नींद न थी वे अभी मन्त्री के साथ बातें करते थे कि किसी जीव के कोलाहल का शब्द सुनाई दिया । जिज्ञासा पर मन्त्री ने बताया—राजकुमार ! इसको चकवी कहते हैं । यह प्रायः पानी में रहती है । दिन भर तो नर और नारी एक साथ रहते हैं परन्तु रात को पृथक-२ हो जाते हैं । यह नारी है जो नर के विछोह में बोल रही है, मानो उसको बुला रही है । प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि यह रात को एक-दूसरे से नही मिल सकते ।

सुनते ही पवनजी का रोम-रोम सिहर उठा । उन्हें रोमाँच हो आया । केवल एक रात्रि के विछोड़े से जब चकवी की यह दशा है जो देवी अंजना की क्या गति होगी ? फिर पत्र के अन्तिम शब्द ध्यान में आते ही—१२ वर्ष बाद १ दिन का वियोग भी असह्य होगा—पवन बेचैन हो उठे । पर करें तो क्या ? अन्ततः अपने मन का असमंजस उन्होंने मन्त्री पर प्रगट किया । मन्त्री ने उसी समय रात्रि में ही उन्हें अंजना के भवन पहुँचने की सम्मति दी ।

"पर यदि मैं इस समय लौट गया तो पिताजी क्या सोचेंगे ? और मित्रवर्ग भी उपहास करेंगे ।" पवनजी ने कहा । इसका समाधान प्रबुद्ध मन्त्री ने यह कहकर किया कि आपको किसी से मिलने की आवश्यकता नहीं है । २-३ दिन अंजनादेवी के पास रहकर आप यहीं सीधे चले आवें तब तक मैं सारी स्थित को संभाले रहूँगा ।"

: १ :

देवी अंजना की अग्नि-परीक्षा

देवी अंजना की प्रतीक्षा की घड़ियों में चित्त की उद्विग्नता का आकलन सम्भव नहीं है । पर रात्रि के तीसरे प्रहर में जब वह

निराशा का आँचल पकड़ने लगी थी, अपने समीप पवन जी को पाकर उसके हर्षातिरेक की भी सीमा न रही। पवन वहाँ दो दिन रहे। जब वे जाने लगे तो इस बीच गर्भ स्थिति का निश्चय जान देवी अञ्जना ने बड़ी भयार्त वाणी से विनय की-स्वामि! आप अपनी माता जी या पिताजी से अवश्य मिलते जावें। पता नहीं आपको उधर कितना समय लगे। किन्तु संकोचवश पवन जी ने इस पर ध्यान नहीं दिया, उसके गम्भीर परिणाम की ओर उनका ध्यान ही नहीं जा सका। सोचा, मैं शीघ्र ही आ जाऊंगा, फिर अपनी अंगूठी देते हुए कहा कि कोई कुछ पूछे तो अंगूठी बताकर मेरे आने के विषय में बता देना।

पवनजी वहाँ जाकर और अधिक उलझ गये। विरोध अधिक बढ़ जाने से उन्हें अनिच्छित दमन कार्य में प्रवृत्त होना पड़ा। इधर अञ्जनादेवी के गर्भ चिन्ह प्रकट होने लगे। महारानी केतुमती को इसकी सूचना मिलते ही वे देवी अञ्जना के भवन पहुँची। अंजना-देवी ने अंगूठी दिखाकर अपनी सास को समस्त वृत्त निवेदन किया, किन्तु उसे पुत्र के इस प्रकार आने और चुपचाप चले जाने की बात में विश्वास नहीं हुआ। 'ईश्वरेच्छा बलीयसि' निरपराध देवी अंजना को भवन से अपमान पूर्वक निर्वासिन कर दिया गया। दुख की मारी अंजनादेवी माता-पिता के द्वार पहुँची, किन्तु वहाँ भी "प्रवेश वर्जित" का नोटिस लगा पाया। + + + +

"राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः" इस परम पवित्र वेद वचन के मूर्तिमन्त प्रतीक महर्षि अगस्त्य प्रत्येक गतिविधिका परिज्ञान रखते थे। उन्हें इस सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान होते ही, देवी अंजना की सुरक्षा का उन्होंने समुचित प्रवन्ध कर दिया। जिस अनजान राह में मात्र अपनी चिर सखी वासन्ती के साथ अंजना देवी आंसुओं में नहाती बढ़ी चली जा रही थीं, कुछ दूर आगे ही उसे एक वयोवृद्ध सज्जन मिले। उनके द्वारा सान्त्वना के दो शब्द सुनकर उस दुखि-यारी को बड़ा ढाढस मिला और जब उसे महर्षि अगस्त्य की व्यवस्था का ज्ञान कराया गया तो वह पूर्ण निश्चिन्तता से उस वृद्ध पुरुष के

साथ होली। समीप ही के घने जंगल में एक सुन्दर आश्रम था, जहां देवी अंजना और उसकी सखी के आवास की सम्पूर्ण व्यवस्था थी। देवी अंजना ने यहाँ पहुँच कर सुख की साँस ली। उसे लगा जैसे—ऋषि कृपा से उसकी दुख-रात्रि कट चुकी है।

युवराज पवन जी ने जब अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त कर राजधानी में प्रवेश किया तो अंजना-निर्वासन के समाचार मिलते ही उन पर तुषारपात हो गया। दौड़े-दौड़े वे महेन्द्रपुर गये, पर वहाँ से भी निराश लौटने पर पवन की दशा पागलों जैसी हो गई, वे राज्य के एक-एक कोने में अंजना की खोज में निकल पड़े।

× × × ×

: ८ :

रहस्योद्घाटन : हनुमान जन्म

महर्षि अगस्त्य आज आश्रम पर स्वयं पधारे हैं। स्वर्ण प्रतिमा सी आभामय, निष्कलंक चन्द्रमा की भांति ज्योतिष्मान् अंजना को उन्होंने सिर झुकाये चिन्ता-निमग्न मुद्रा में देखा और देखा समीप ही उदासी में डूबी उसकी सखी वासन्ती को। एक बार तो ऋषि भी इस दृश्य को देख मर्माहत हो उठे, पर शीघ्र ही उन्होंने अपने को संभाल लिया। बड़ी ही प्रशान्त मुद्रा और संयत वाणी में वे देवी अंजना को सम्बोधित कर रहे थे—"पुत्री तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा यह कष्ट मेरी योजना का अङ्ग है। तुम लोगों का १२ वर्षीय ब्रह्मचर्य रूप तप भी मेरे ही निर्देश के क्रम में था, क्या तुम्हें इस रहस्य का कुछ ज्ञान है ?"

अंजना ने पति द्वारा प्रेषित पत्र जो 'सुहागरात' के दिन उसे मिला था और जिसे उसने यत्नपूर्वक संभाल कर रख छोड़ा था, ऋषि के हाथों में थमा दिया।

मुनिवर मुस्काये—"ठीक-ठीक ! तो वह दिन आज आ गया है, जब इस तपस्या का रहस्य तुम जान सकोगी। प्रिय पुत्र पवन जी

ने पत्र में वह सब न लिखकर ठीक ही सोचा, पता नहीं पत्र भूल से किसी के हाथ पड़ जाता।" पुनः वासन्ती की ओर संकेत करके वे बोले—'पुत्री वासन्ती को तो मैं जानता हूँ, वह तुम्हारे निकट 'दो देह एक प्राणके तुल्य है। अतः उसकी उपस्थितिमें किसी रहस्य का उद्-घाटन करने में मुझे कोई झिझक नहीं करनी चाहिये, क्यों पुत्री अंजना ?"

"गुरुदेव ! आप जो कहना चाहे निःसंकोच कहें। मुझमें और वासन्ती में कोई भेद नहीं है। अंजना नें आश्वस्त किया।

तो पुत्री ! बात यह लगभग २५ वर्ष पुरानी है। पवन जी की आयु भी तब लगभग १४-१५ वर्ष रही होगा। संन्ध्या होने को थी। मैं गुरुकुल के एक प्रकोष्ठ में बैठा किसी वैज्ञानिक-अन्वेषण क्रिया में व्यस्त था कि अकस्मात् कुछ दर्द भरी चीखें सुन पड़ीं। कुछ समय में यह कोलाहल और बढ़ गया। आहत व्यक्तियों के करुण-क्रन्दन से आश्रम का वातावरण गूंज उठा। मेरे लिए वह नया अनुभव नहीं था, पर किशोर पवन का हृदय जैसे स्वयंसे विद्रोह कर उठा, आश्रम नियमों की अवज्ञा करके भी वह सीधा मेरे कक्ष में दौड़ा आया। वह बुरी तरह घबरा रहा था। मैंने उसे ढाढस दिया। पूछा— 'वत्स ! बोलो, बात क्या है ?" बड़ी देर में साहस बटोर कर वह बोला— "गुरुदेव यह आर्त्तनाद, यह करुण-क्रदन क्या है ? मेरे कानों के पर्दे फटे जा रहे हैं, भगवन् !"

"और पुत्री अंजने ! पवन की इस भावोद्रेक युक्त जिज्ञासा के साथ ही मुझे लगा—ईश्वरने मेरी आत्म-पुकार को सुन लिया, जिस क्षत्रिय आत्मा की मुझे आवश्यकता थी, वह आज मुझे मिल गई। और तब प्रगट में मैंने कहा—"प्रिय पुत्र ! हम लोगों के लिए इसमें कुछ भी नयापन नहीं है। हाँ, तुम्हारे आश्रम में आने के बाद इधर के क्षेत्र में यह शायद पहली घटना है। जहाँ से ये आवाजें आ रही हैं, वहाँ लगभग १ मील पर मुनियों के कई छोटे-२ आश्रम हैं, जहाँ वे कन्द-मूल, फल खाकर वानप्रस्थ जीवन की स्वाध्याय और सत्संग

मूलक साधना और तितीक्षा करते हैं, वहाँसे कुछ दूरी पर ही राक्षसों के राजा, लंकाधिपति रावण की सैनिक छावनी है। वानर राष्ट्र के स्वामी महाराज वाली के साथ रावण की सन्धि के अनुसार ही यह छावनी वहाँ है। समय २ पर ये राक्षस कर वसूलीके मिष ऋषियोंके इन आश्रमों को ध्वस्त करते और अनेक विधि उन्हें प्रपीड़ित करते हैं। आज वैसा ही दुर्दिन उपस्थित हुआ प्रतीत होता है।"

"पुत्रि अंजना! किशोर पवन के मानस में जैसे क्रान्ति का एक तूफान उठ खड़ा हुआ हो, बड़े ही भावावेश में वह बोला—"गुरुदेव! क्षमा करें, तब इन वैज्ञानिक शोधों और परीक्षणों का क्या लाभ? गुरुदेव, आपने ही तो एक बार कहा था कि विज्ञानका उद्देश्य तो सद्ज्ञान का रक्षण है। पर जब सद्ज्ञान (वेदज्ञान) के संरक्षक और संवाहक मुनियों को ही नष्ट किया जा रहा है और विज्ञान उनकी रक्षा न कर सके तो उसका क्या उपयोग?

"पर पुत्र! हमने ब्राह्मण धर्म की दीक्षा ली है। हमारा कार्य ज्ञान-विज्ञान की समुन्नति और विकास है। हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों के उपयोग के लिए हमें किसी सच्ची क्षत्रिय आत्मा की प्रतीक्षा है।"

और तब पवन ने बिना एक क्षण लगाये ओजस्वी स्वर में कहा—"गुरुदेव! आज्ञा दीजिए, तब मुझे क्या करना है?"

मेरा हृदय प्रसन्नता से भर गया पुत्री! और तब मैंने और अधिक दृढ स्वर में कहा—'पर मुझे इस कार्य के लिए एक महावीर चाहिए प्यारे पुत्र!"

'महावीर' से आपका अभिप्राय? किशोर पवनकी जिज्ञासा थी*

* मत्तेभ कुम्भ दलने, भुवि सन्ति शूराः।
केचित् प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षाः॥
किन्तु ब्रवीमि, बलिनाम् पुरतः प्रसह्य।
कंदर्प दर्प दलने, विरला मनुष्याः॥

—भर्तृहरि

"पुत्र ! किसी राजा, महाराजा या सम्राट् पर विजय पाना केवल वीरता है, पर कामदेव के शत-शत आकर्षणों पर विजय पाने वाला सच्चा महावीर है।" मेरे इस उत्तर के साथ ही प्रिय पवनजी ने विवाह न करने और आजन्म ब्रह्मचारी रहकर असुर-नाश के महा व्रत की दीक्षा ली।

पर शायद अवस्था के विचार से या किसी प्रकार कहो पवन के इस संकल्प के पीछे भावावेश का आधिक्य था। तुम्हारा चित्र देख कर, तुम्हारे सौन्दर्य और सद्गुणों के प्रभाव में उसे अपना व्रत विस्मृत हो गया। वह तुम्हारे साथ विवाह-सम्बन्ध की स्वीकृति दे बैठा। बाद में उसे उन्हीं ध्वस्त ऋषि आश्रमों के समीप से गुजरने पर अपना व्रत स्मरण हो आया। वह छटपटाने लगा। प्रायश्चित्त की भावना लेकर वह मेरे समीप आया। मुझे भी पहले तो कुछ सूझ नहीं पड़ा पर बाद में ईश कृपा से तुरन्त ही मुझे प्रेरणा हुई, उसी के अनुसार मैंने १२ वर्ष तक तुम दोनों की ब्रह्मचर्य-साधना के पश्चात् एक 'महावीर' को जन्म देने का विधान बताया। यह है पुत्री संक्षेप में तुम्हारी संयम-साधना का रहस्य। और अब तुम्हारे इस निर्वासन के पीछे भी मेरी ही योजना काम कर रही है। वानर जाति के कुछ युवक मेरे ही संकेत पर विद्रोह कर रहे हैं। यह सब जान-बूझ कर किया गया है ताकि पवन जी कुछ समय उधर ही उलझे रहें। तुम्हारे इस निर्वासन के दो बड़े लाभ हैं—गर्भगत बालक पारिवारिक जीवन के प्रति निरीह और ममता-शून्य होने का संस्कार ले सकेगा साथ ही यहाँ आश्रम के कठोर श्रम-साध्य जीवन के संस्कारों से संस्कारित हो सकेगा। याद रखो गर्भावस्था और उसके पश्चात् १ वर्ष के समय के संस्कार बालक के जीवन में अमिट रहते हैं। बालक १-१॥ वर्ष का

अर्थात् मतवाले हाथी का दलन करने वाले शूरवीर मिल जाते हैं प्रचण्ड सिंह का वध करने में दक्ष शूरवीर भी कई होते हैं। किन्तु मेरा कथन है कि इन बलियों से बढ़कर कामदेव की चोट को सहकर उसके दर्प का दलन करने वाले (महावीर) विरले होते हैं।

हो जायगा तभी प्रिय पवन जी से तुम्हारी भेंट हो सकेगी। अंजना अब प्रसन्न और निश्चिन्त थी। महर्षि का उसने बार-बार धन्यवाद किया। + + +

अंजना देवी का प्रसव समय उपस्थित है और देखते देखते महर्षि अगस्त्य की व्यवस्था में इस पुनीत आश्रम पर हमारे चरित-नायक, माँ भारती के यशस्वी पुत्र, आर्य संस्कृति के कीर्तिस्तम्भ महा-वीर हनुमान ने जन्म ले लिया।

चैत्र मास वदि अष्टमी पुष्य नक्षत्र प्रमाण।
दिन मंगल परभात को जन्म लिया हनुमान॥
काले केश सुहावने मस्तक चन्द्र समान।
दीर्घ हनु से भासता महावीर बलवान॥
देख अंजना बाल-मुख करती निज प्रभु ध्यान।
कठिन समय रक्षा करो इसकी हे भगवान्॥
बार-बार करती रही शत मुख ऋषि गुणगान।
जिनकी अनुपम साध से भारत मही महान्॥

बालक जन्म समय ही बड़ा दृढ़ाङ्ग, मेधावी और अपूर्व तेज-स्विता से युक्त प्रतीत होता था। महर्षि ने देखा तो प्रसन्नता से भर उठे। प्रभु का कोटिशः धन्यवाद किया, उन्होंने। उनका प्रयोग सफल था। वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे।

बालक की दीर्घ हनु (ठोड़ी) एक विशेष आकर्षण का केन्द्र थी। निश्चय ही वह बालक के स्वात्माभिमान और महावीरत्व का प्रतीक थी। महर्षि ने इसी को आधार मानकर बालक का नामकरण 'हनु-मान' (ठोढ़ी वाला) किया।

× × × ×

: ६ :

माता निर्माता भवति

माता अंजना और अपने वीर पिता की बारह वर्षीय

घोर तपस्या और अनूठी साधना की प्रतिमूर्ति था, वह बाल
बालक को ऋषि योजनानुसार संस्कारित करना ही माता अञ्जना
सबसे बड़ी जीवन-साध बन गई थी। उसने अपने साधना कक्ष
त्यागी-तपस्वी ब्रह्मचर्य व्रती आदर्श प्रवीरों के चित्र लगा रखे
अपने शयन-कक्ष में भी उसने "मम पुत्रा शत्रुहणा" "वयं जये
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" "वयं तुभ्यं बलिहृतः स्या
"उप सर्प मातरं भूमिम्" "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या" आदि म
भूमि-भक्ति, ब्रह्मचर्य महिमा और कर्तव्य प्रेरक आदर्श वाक्य सु
सुवाच्य अक्षरों में लिख रखे थे। अपमान लाञ्छना, प्रतारणा अ
घोर मानसिक कष्ट के क्षणों में भी माता अंजना गर्भगत बालक
'आत्म-शंसन' द्वारा वीरत्व के भावों से संस्कारित करना नहीं भू
थीं। एक महावीर की महामूर्ति उसके मनःक्षेत्र का विषय थी। अ
कल्पना पंखों से वह उड़ान लेतीं और उस महावीर के रेखा-चित्र
विविध भाँति के रंगों से सज्जित कर फूली न समातीं। स्वप्न उ
प्रायः आते न थे, पर जब कभी आते तो स्वप्न में भी इसी चित्र
विविध वीरोचित भाव भंगियों से सजाने में व्यस्त रहतीं। महामु
अगस्त्य कभी-कभी आश्रम पर आते तो देवी अञ्जनाको समक्ष बि
कर "वैदिक वीर गर्जना" के पवित्र मन्त्रों से अभिमन्त्रित करते
दैनिक अग्निहोत्र के समय दैनिक आहुतियों के साथ इन मन्त्रों
दैनिक विशेष आहुतियाँ माता अञ्जना द्वारा दिये जाने का विशे
निर्देश ऋषि ने किया था।

बालक के पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार की विधि आ
में ही सम्पन्न हुई थी। माता अञ्जना का खान पान परम सात्वि
दिनचर्या बड़ी ही नियमित और रहन-सहन परम स्वच्छ और सा
था। भूमि शयन और कठोर जीवन का अभ्यास परिस्थिति ने अ
स्वयं दे दिया था। मानो देवी अंजना के जीवन का यह कर्मफलज
अभिशाप गर्भगत बालक के जीवन-विकास के लिये वरदान ब
गया था।

देवी अंजना एक सुशिक्षित वैदिक धर्मी महिला थीं। उन्हें अपने महान् कर्त्तव्य और दायित्व का पूर्ण ज्ञान था। उन्हें मात्र जननी (बालक को जन्म देने वाली) ही नहीं वरन् एक सफल माता का आदर्श प्रस्तुत करना था। "माता निर्माता भवति" का वैदिक आदर्श उन्हें सदैव अनुप्राणित किये रहता। वे जानती थीं कि सु-सन्तान का निर्माण गृहस्थ धर्म की सर्वोत्तम उपलब्धि है और कि सन्तति की राष्ट्र के श्रेष्ठतम घटक (सुयोग्य नागरिक) के रूप में निर्मिति जननी जन्म भूमि और अपने महान् राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है। अपने इस कर्त्तव्य के सु-सम्पादन को वे भगवद् आराधन और ईश्वर भक्ति का पर्याय मानती थीं। बालक के जन्म के पश्चात् तो वे अपने कर्त्तव्य के प्रति और भी अधिक जागरूक और सचेष्ट थीं। क्या बालक को दूध पिलाते समय और क्या उसे लोरियां देते समय-प्रत्येक अवसर पर वे उसे उत्तम भावों से भावित और स्वदेश-भक्ति और मानवता के महान् आदर्शों से संप्रेरित करने का यत्न करतीं। न अनावश्यक लाढ़ और न अनुचित भर्त्सना—एक गम्भीर और महनीय कर्त्तव्य के रूप में वे इसे निभातीं। साधारण स्त्रियों की भाँति न तो वे बालक को मात्र मनोरंजन का साधन समझतीं, न उसे असत्य बोल कर सान्त्वना देतीं और न उसे 'हौवा' आदि के मिथ्या भय दिखला-कर उसके मनोबल को दुर्बल बनाने या आत्मा को कुसंस्कारित करने का पाप मोल लेतीं। भूत-प्रेत, जादू-टोना" आदि के अवैदिक कुकृत्य और सन्तति नाशक महा अनर्थ तो उस काल में चलते ही न थे। एक ईश्वर-विश्वास ही आस्तिकता के क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का मूलाधार था। यों माता अंजना एक आदर्श माता के पवित्रतम दायित्व का पूर्ण मनोयोग से निर्वहन करती थीं।

× × × ×

: १० :

होनहार बिरवान के......

बाल हनुमान जन्म समय ही १ वर्ष जितने लगते थे। ३-४ महीनेके रहे होंगे, कठिनाई से तब एक प्रातः की घटना है। घने जंगल के मध्य एक लघु पर्वत खण्ड पर बने इस आश्रम के खुले भाग में पालना पड़ा था। माँ अपने होनहार और चंचल बालक को दूध पिलाकर पालने में सुलाने का प्रयास कर रही थी। प्रशान्त मन सस्मित बदन वह बालक को निहार रही थी। दूध पिलाने और पालने में झुलाने के इस सारे समय वह पवित्र वेद मन्त्रों का पाठ करती जाती थी। वेद मन्त्र गाते-गाते वह उनके अर्थों पर विचार करने लगी और भाव-मग्न सी हो गई। उसकी इसी अवस्था में बालक के पालने को एक तेज झोटा लग गया। और यह क्या? बालक पालने से उछल कर दूर शिखर से काफी नीचे जा पड़ा। अंजना का ध्यान टूटा, वह घबरा उठी। शीघ्रता से वह नीचे आई और यह देखकर कि बालक प्रसन्न मुद्रा में सुरक्षित है उसके हर्ष की सीमा न रही। उसे यह देख कर तो और अधिक आश्चर्य हुआ कि शिला के जिस किनारे पर बालक आकर गिरा था, उसकी एक नोक बालक के शरीर के आघात से झड़ गई है। माता अंजना ने प्रभु का कोटि-कोटि धन्यवाद किया। महर्षि अगस्त्य ने जब यह घटना सुनी तो उनका रोम-रोम प्रहर्षित हो उठा। उन्होंने बड़े प्यार से बालक को चूमते हुए कहा "मेरा हनुमान तो 'वज्राङ्गी' (वजरङ्गी) है।"*

---

*कवि ने इसी घटना को यों पद्य-बद्ध किया है -

एक दिन खुशी में अंजना हनुमान बाल को,

माता अञ्जना वैदिक लोरियाँ देते हुए, शिशु हनुमान को पालना झुला रही हैं। थोड़ी असावधानी हुई, तेज झोटा लगने से बालक बहुत नीचे शिला पर गिर गया। पर यह क्या? बालक तो मुस्करा रहा है। उसे कोई चोट नहीं लगी हाँ, शिला अवश्य टूट गई। धन्य है 'वज्राङ्ग हनुमान!'

यद्यपि देवी अंजना को ऋषि आश्रम में किसी प्रकार का कष्ट नहीं है, उसके साथ उसकी जीवन सखी वासन्ती तो है ही, उसकी पुण्य पावनी गोद में वज्राङ्गी हनुमान जैसा शोभनीय लाल भी है। फिर भी उसका चित्त कुछ दिनों से उदास-उदास सा रहता है। जब से उसे किसी सूत्र द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पवन जी युद्ध से लौट आये हैं और अंजना की खोज में घूम रहे हैं, उसे चैन नहीं है।

आज बालवीर हनुमान एक वर्ष के हो गये हैं। "वैदिक वर्धापन विधि" के अनुसार माता अंजना ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। यज्ञ समाप्ति पर आशीर्वाद देकर तथा अंजना को शीघ्र ही कष्ट मुक्ति का आश्वासन देकर महर्षि अगस्त्य अपने गुरुकुल में चले गये। इधर इस जन्मोत्सव के सन्दर्भ में अंजना देवी की उदासी और अधिक बढ़ गई। "पता नहीं कब पतिदेव के दर्शन होंगे ? पता नहीं मुझ अभागिन की खोज में वे कहाँ-कहाँ भटकते होंगे।" रह-रह कर ये विचार उसके हृदय को विदीर्ण करने लगे। इसी उदास अवस्था में जब वह आश्रम के प्रांगण में सिर झुकाये बैठी थी कि अकस्मात् एक चमकीली वस्तु जो सूर्य के सदृश प्रतीत हो रही थी, इस ओर को आती

पलना झुला के लोरियां देती थी लाल को।
गफ़लत हुई कि जोर से झोटा जो लग गया,
हनुमान वीर कोट की खन्दक में गिर गया॥
झट दौड़ अंजना ने उसे उर से लगाया,
और झाड़ पोंछ कर उसे बहु-भांति चुमाया।
भय ग्रस्त हो कुछ काल वह बैठी रही वहीं,
बोली कि मेरे लाल लगी तो कहीं नहीं॥
माता मेरे लगी नहीं, यह झूठ नहीं है,
हाँ चोट शिला के लगी जो टूट गई है।
ऐसे थे यहाँ पुष्ट वीर जिनका मान है,
हनुमान बली वीरवरों में प्रधान है॥

दिखाई दी। वह कुछ काल उसे टिकटिकी बाँध देखती रही, पश्चा
ज्ञात हुआ कि कोई विमान आ रहा है, देवी अंजना ने पुनः सिर झुक
लिया, किन्तु बालक उस आती हुई वस्तु की ओर हाथ उठाक
चिल्ला उठा और ऊँचे स्वर में रोने लगा।

इस विमान में एक श्वेत दाढ़ी धारी पुरुष उत्तम-उत्तम वस्
धारण किये एक स्त्री से बातें करता हुआ आ रहा था कि अचानक
उसकी दृष्टि अंजना पर पड़ी और बालक के रोने का स्वर भी उन
कानों में टकराया। पता नहीं क्यों, उनके मन में करुणा जागी औ
उन्होंने विमान थाम लिया। आश्रम की इस निर्जन कुटिया पर
सौन्दर्य मूर्ति इस युवती और इस विचित्र बालक को देखकर स्व
भावतः उन्हें कौतूहल हुआ व तथ्य जानने की जिज्ञासा भी। विमा
को वृक्षों की आड़ में धरती पर उतार वे उस देवी के पास आये
विपत्ति से कुम्हलाई अंजना को वे तो इतना शीघ्र न पहिचान सके
फिर यहाँ इस रूप में उसकी कल्पना भी उन्हें क्योंकर हो सकती थी
पर अंजना को यह पहिचानते एक क्षण भी नहीं लगा कि वह वृद्ध
पुरुष उसके अपने मामा प्रतिसूर्या हैं और साथ वाली स्त्री उनकी
पत्नी रवि सुन्दरी है। अंजना उन्हें देखते ही फूट-फूट कर रो पड़ी।
हृदय का सारा शोकावेग आँखों की राह निकल पड़ा। अंजना ने
जब हिचकियों के बीच अपनी सम्पूर्ण 'राम कहानी' सुनाई तो बरबस
राजा रानी भी रो पड़े। किसी प्रकार राजा प्रति सूर्या ने स्वयं को
शान्त कर अंजना देवी को भी आश्वस्त किया कि अब शीघ्र ही
पवन जी और परिवारी जनों से उसकी भेंट हो सकेगी।

यह विमान नौका के समान था। इस पर बड़ा ही सुन्दर
कलात्मक चित्रण हो रहा था। एक ओर इस पर तम्बू तना था जिस
पर चारों ओर सुनहरी काम कुछ इस प्रकार से हो रहा था कि सूर्य
के प्रकाश में इससे आँखें मिलाना कठिन था। इस पर कलाकार
ने मोतियों की एक झालर बना इसमें थोड़ी २ दूर पर एक-एक
सोने का बनावटी मोती गेंद के सदृश इस प्रकार से फिट किया था

कि यान की गति वृद्धि के साथ इसकी चमक और भी बढ़ जाती थी।

अपने मामाजी और मामीजी को विदाई देने के लिए जैसे ही अंजना खड़ी हुई कि उसके पुत्र की दृष्टि इन चमकीले बनावटी मोतियों पर पड़ी। वह जोर लगाकर गोदी से उछला* और इनको पकड़ना चाहा पर पकड़ न सका और एक बार पुनः पर्वत से नीचे की ओर गिर गया। अंजना और वासन्ती तो अधिक चिन्तित नहीं हुईं पर रविसुन्दरी तो स्तम्भित और भयग्रस्त हो शोक मग्न हो गई। किन्तु राजा थोड़ी देर में उसे लेकर लौटा और बोला अंजना तेरे पुत्र का शरीर तो वज्र के समान है। ईश्वर का धन्यवाद है कि जब मैं गया तो यह बैठा अंगूठा चूस रहा था, मुझे देखकर रोने लगा। रवि सुन्दरी ने बालक को राजा से लेकर छाती से

---

*यह जो सर्व साधारण में प्रसिद्ध है कि हनुमान ने बाल्यावस्था में सूर्य को उछल कर पकड़ा और इस विचार से कि खाने का एक लाल फल है मुँह में डाल लिया, उसका आधार यही घटना प्रतीत होती है। वास्तव में न तो कोई फल था और न ही सूर्य था, वरन् इसी विमान के चमकीले सुन्दर बनावटी मोती थे जिनको कवियों ने सूर्य से उपमा दी है। और पश्चात् टीकाकारों ने वास्तविक घटना को भुला उसे सूर्य ही बना लिया।

इस प्रसङ्ग में यह भी विचारिणीय है कि पवित्र वेद मन्त्रों में प्रयुक्त अनेक अलंकारिक वर्णनों को, गाथाकारों और पुराणकारों ने व्यक्तित्व प्रदान कर अलंकारों को सत्य घटना ही बना डाला है। बलि और वामनावतार की कथा कथा, विष्णु का शेष शय्या शयन, शंख चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णु अहल्योद्धार की कहानी, आदि पवित्र वेदों के अलंकारिक वर्णन हैं उन्हें सत्य घटना का रूप दे दिया गया है। अभी २ कुछ दिन हुए एक महात्मा जी ने हमें बताया कि पवित्र वेद के एक मन्त्र का मन्त्रांश है 'कपिर्विष्णुं खादति' (मन्त्र का पता उन्होंने हमें लिखकर भेजने को कहा था) कपि कहते हैं

लगाया और माथा चूमकर कहने लगी, 'बेटा, वज्रङ्गी ! कहाँ की सैर की।" अंजना ने मुस्काते हुए बताया कि एक बार पहले भी यह ऐसा ही कौतुक कर चुका है, तब तो यह ३-४ मास का ही था। और गुरु महाराज ने भी तब ठीक यही शब्द 'वज्रङ्गी' प्रयुक्त किया था। तब से बालक का एक नाम वज्रङ्गी (बजरङ्गी) विख्यात ही हो गया।

× × × ×

: ११ :

मधुर मिलन

राजकुमार पवन ने सब कहीं अंजना को खोजा पर कुछ पता न लगा। एक वर्ष से अधिक हो गया, उनको। पवन जी की दशा बिल्कुल एक विक्षिप्त युवक सी हो गई। अन्त में निराश हो उन्होंने अंजना को अपनी भूल से कष्ट देने और अपमानित एवं लांछित होने के प्रायश्चित स्वरूप निश्चय किया कि यदि एक मास में अंजना का पता न लगा तो वे 'आत्मदाह' कर लेंगे। महाराज प्रह्लाद विधाधर, रानी केतुमति तो सिर धुन-धुन कर रोने लगे। सारे राज्य

कम्पन्न करने वाले को। बादल अपनी गर्जना में कम्पन करता है, अत: बादल को भी कपि कहा गया है। विष्णु का प्रसिद्ध वैदिक अर्थसूर्य है ही। बादल सूर्य को खाता है अर्थात् बादल सूर्य को ढक लेता है। यह इस अलंकारिक प्रयोग का अर्थ है। किंतु अन्य प्रयोगों की भाँति इस अलंकारिक प्रयोग को भी एक चमत्कारिक, सृष्टि नियम विरुद्ध, विज्ञान और बुद्धि विरुद्ध घटना का रूप दे दिया कि हनुमान सूर्य को गाल में दे गये। वानर जाति के लोग भी अपने घोषों और उछल कूद द्वारा कम्पन उत्पन्न करते थे। अतः साहित्यिक प्रयोगों में उन्हें भी कपि कहा गया है। शायद इसी से यह भ्रान्ति हुई है।

में कुहराम मच गया। अंजना के माता-पिता भी अपनी करनी पर नौ-नौ आँसू बहाने लगे।

महर्षि ने ठीक समय जान राजधानी में प्रवेश किया और पवनजी को हृदय से लगाकर कहा—पुत्र! चिन्ता त्यागो। तुम्हारी अंजना हमारे बालवीर सहित सुरक्षित है। सम्पूर्ण रत्नपुर राज्य में उस समय प्रसन्नता की लहर दौड़ गई जब मुनिवर ने बताया कि पुत्री अंजना जीवित और सुरक्षित है। दिशायें उपदिशायें उस समय 'वैदिक पुरोहित' की जय-जयकार कर रही थीं। इसी समय राजा प्रतिसूर्या और रविसुन्दरी ने विमान द्वारा महेन्द्रपुर पहुँच कर समस्त वृत्त कहा। वे भी दौड़े हुए रत्नपुर आये महर्षि वहाँ पहले से ही उपस्थित थे। सभी लोग मिलकर उस वन्य प्रदेश स्थित आश्रम में पहुँचे। महारानी केतुमती ने दौड़कर अंजना को हृदय से लगा लिया इधर उसकी माँ ने दौड़कर गोदी में भर लिया। आश्रम पर एक अपूर्व दृश्य उपस्थित हो गया। वीर बालक के तेजोमय मुख मण्डल को देखकर और उसकी कौतुकपूर्ण लीलाओं को सुनकर सभी उस पर निछावर हो रहे थे।

पवन और अंजना का यह मधुर मिलन जहाँ परस्पर एक दूसरे में खो जानें का अभिनव आमन्त्रण था तो महर्षि अगस्त्य के निकट राष्ट्रोद्धार की अपनी महती योजना के प्रथम चरण की सफ-लता के रूप में यह सर्वाधिक हर्ष का प्रकरण था।

× × × ×

: १२ :

हनुमान का बचपन

बालक हनुमान शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ रहा था। क्रमशः दो......तीन.......चार। बालक अब पाँच वर्ष का था, किन्तु

कोई भी उसे ८-१० वर्ष से कम का नहीं बताता, उसकी अलौकिक छवि और अद्भुत करनी सम्पूर्ण परिवारी-जनों और प्रजाजनों को मन्त्र-मुग्ध करने में समर्थ थी। अपने से काफी बड़ी आयु के उद्दण्ड और उच्छृंखल बालकों की वह मुष्टिका के एक ही प्रहार में बुद्धि ठिकाने ला देता किन्तु निर्बल और सताये जा रहे बालकों की हिमायत करता। उसकी लम्बी-२ कूद और दौड़ें देखकर सभी आश्चर्य निमग्न रह जाते। पर इसके साथ ही बालक की विनयशीलता भी तो अत्यधिक सम्मोहक थी।

माता-पिता ने ऋषि निर्देशानुसार एक परम पुनीत कर्त्तव्य के रूप मे बालक को सद्गुणों से अलकृत करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। प्रातः ईश वन्दना के पवित्र मन्त्रों के अतिरिक्त उसे अनेकों सुन्दर सुभाषित स्मरण कराये गये थे। बड़े और छोटों के साथ व्यवहार का शिक्षण उसे दिया गया था। माता अंजना सोने से पूर्व बालक को वीर पूर्वजों की कहानियाँ सुनाती। कमरे में थे, राष्ट्र हित के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले वीर पुरुषों के चित्र और वैसा ही साहित्य। प्रातः ही बालक पवित्र वेद मन्त्रों द्वारा प्रभु वन्दना कर माता-पिता और गुरुजनों का चरण स्पर्श एवं 'नमस्ते' निवेदन पूर्वक विनम्र अभिवादन करता और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्नता लाभ करता। प्रजाजनों के साथ उसके व्यवहार की विनम्रता और शालीनता तो सर्वथा दर्शनीय थी।

हनुमान अपनी बाल-मण्डली के सरदार थे, किन्तु सभी के साथ व्यवहार इतना आत्मीयता पूर्ण कि किसी प्रकार के भेदभाव की छाया तक नहीं। अपने मधुर मन्द हास से तो वे सभी का हृदय हर लेते।

बाल वीर हनुमान अब आठवें वर्ष में प्रवेश किया चाहते हैं कि अनायास एक दिन महर्षि अगस्त्य राज भवन में पधारे। दम्पत्ति ने बड़े भक्ति-भाव और आन्तरिक श्रद्धा से गुरुदेव का आतिथ्य किया वीर हनुमान भी अपनी बाल-मण्डली से छुट्टी ले तब तक आ पहुँचे।

आते ही वह माताजी एवं पिताजी के चरणों का स्पर्श कर अभिवादन करे, इसके पूर्व ही माता का संकेत मिलने पर उन्होंने नवागन्तुक महाराज के चरणों में माथा टेक दिया। महामुनि ने अपने प्यारे को हृदय से लगा लिया। स्वास्थ्य और सदाचार विषयक् बालक की प्रगति और विकास से महर्षि बड़े सन्तुष्ट हुए। बालक की मेधा, मनोबल और आत्म-विकास का परिचय कई प्रश्नों के समुचित समाधान से पाकर ऋषिवर ने बालक के वेदारम्भ और यज्ञोपवीत संस्कार का प्रस्ताव किया।

"भगवन्! विशेष तो आप ही समझ सकते हैं। इसके इन सात वर्षों का एक-एक क्षण भी आपके द्वारा नियन्त्रित ही रहा है, पर भगवन्! आयु के आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत क्षत्रिय कुमार के लिए क्या इसे अति शीघ्रता नहीं माना जायगा?" देवी अंजना ने बड़े संकोच से विनम्रता पूर्वक निवेदन किया।

"पुत्री! तुम्हारा शास्त्र विषयक् ज्ञान देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। गृह्य सूत्रों की व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय कुमार का यज्ञोपवीत ११ वें वर्ष में होना चाहिए। * यों तुम्हारा गोत्रना

---

*अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भाष्टमे वा ॥२॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥३॥ द्वादशे वैश्यम् ॥४॥ आशोडषाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥५॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य आचतुर्विंशात् वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतित सावित्री का भवन्ति ॥६॥

आश्वलायन गृह्य सूत्र अ०। क० १९। सूत्र १-६

अर्थात् जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उससे आठवें वर्ष में ब्राह्मण पदाधिकारी (स्वामी दर्शनानन्द जी की व्याख्यानुसार) जन्म वा गर्भ से ११ वें वर्ष में क्षत्रिय पदाधिकारी और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य पदाधिकारी बालक का यज्ञोपवीत करें। ब्राह्मण पदाधिकारी का सोलह, क्षत्रिय पदाधिकारी बाईस और वैश्य पदाधिकारी बालक का चौबीस वर्ष पूर्व ही यज्ञोपवीत हो जाना चाहिए, यदि पूर्वोक्त काल में न हो तो पतित माने जावें।

सामान्यतया उचित ही है। पर पुत्री ! यह बालक तो —

"अग्रतश्चतुरो वेदः पृष्ठतो सशरो धनुः"

—का मूर्तिमान प्रतीक है। यह बालक तो न केवल बल-विक्रम में अपने समय का अद्वितीय वीर सिद्ध होगा, किन्तु विद्या और पांडित्य के क्षेत्र में भी बेजोड़ प्रमाणित होगा। अतः ठीक इसकी आठवीं वर्षगांठ के दिन इस बालक का वेदारम्भ एवं यज्ञोपवीत संस्कार हम स्वयं सम्पन्न करायेंगे।

× × × ×

: १३ :

गुरु चरणों में : श्री राम से प्रथम भेंट

वेदारम्भ एवं यज्ञोपवीत के विधिवत् सम्पादन के पश्चात् वीर हनुमान ने गुरुकुल में प्रवेश किया। प्रखर मेधा और शौर्य का धनी यह बालक अत्यल्प समय में ही कुल-भूमि में सर्वप्रिय बन गया।

प्रतिवर्ष गुरुकुल के ब्रह्मचारी किसी अध्यापक के साथ नये-नये अनुभवों को प्राप्त करने ओर सामान्य ज्ञान वृद्धि के उद्देश्य से देशाटन के लिए जाते थे। इस वर्ष इस यात्रा का नेतृत्व स्वयं आचार्य प्रवर महामुनि अगस्त्य कर रहे थे और यह यात्रा आर्य राष्ट्र की मुख्य राजधानी अयोध्या के लिए प्रस्थित हुई। महर्षि को यह तो ज्ञात ही था कि महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के समय ऋषियों द्वारा निर्मित योजना के अधीन ऋष्य श्रृङ्ग द्वारा 'पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया गया था, जिसके परिणाम स्वरूप महाराज दशरथ की तीन रानियों ने चार वीर पुत्रों को जन्म दिया था। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि पूर्व निश्चित याजना के अनुसार ये चारों राजकुमार सद्यः महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में वेदाध्ययन और ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं का अध्ययन कर रहे थे सम्पूर्ण स्थिति से स्वयं परिचित होने तथा बाल वीर हनुमान का आरम्भिक परिचय दशरथ-पुत्र
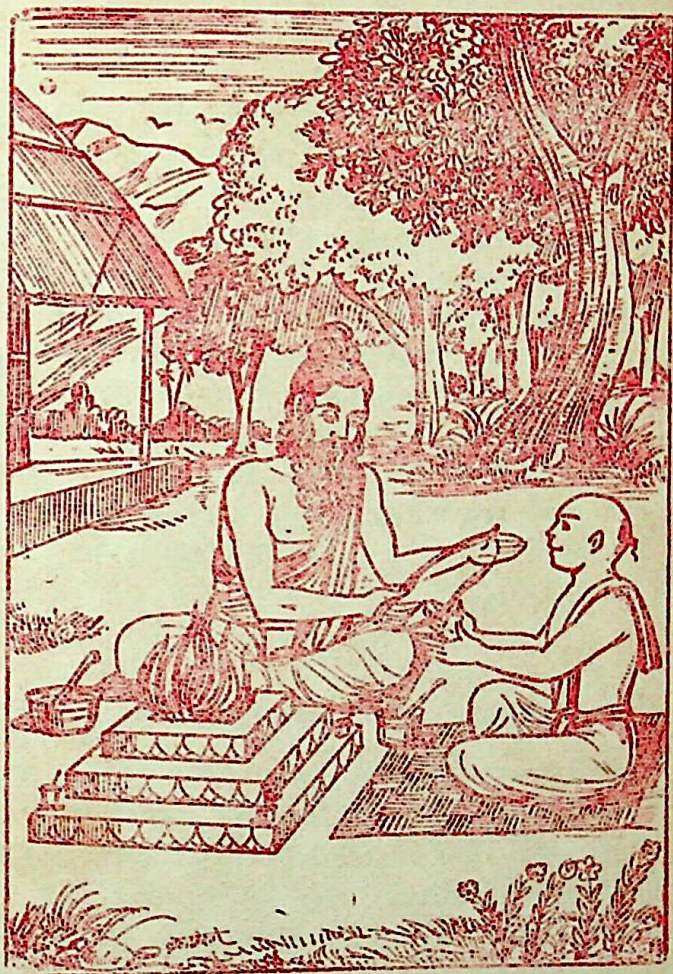
महर्षि अगस्त्य ब्र० हनुमान को यज्ञोपवीत की दीक्षा देते हुए राष्ट्रोद्धार व्रत में दीक्षित कर रहे हैं।

रामादि से कराने के साथ ही हनुमान के प्रशिक्षण में आवश्यक सुधार करने के उद्देश्य से ही यह यात्रा आयोजित की गई थी।

अयोध्या नगरी की अलौकिक शोभा, अनुपम विशालता और विराटता ने सभी यात्रियों को स्तम्भित तथा अत्यधिक प्रभावित किया। बाल वीर हनुमान महाराज दशरथ के चारों पुत्रों मुख्यतया ज्येष्ठ पुत्र श्री राम के साथ अभिन्न हो गये। महर्षि वशिष्ठके आश्रम में ही मुनिवर अगस्त्य अतिथि बने थे। हनुमान और श्री राम दोनों वीरों की जोड़ी को देखकर मुनिवर तो जैसे निहाल हो गये।

दोनों ऋषियों ने एक दिन एकान्त में कुछ आवश्यक चर्चा की उसके अनुसार ही श्री राम को धनुर्विद्या और वीर हनुमान को गदा-युद्ध तथा मल्लयुद्ध में प्रथम श्रेणी की प्रवीणता सिद्ध कराने का निश्चय किया गया। कुछ दिनों के इस अविस्मरणीय आतिथ्य के पश्चात् महामुनि अगस्त्य अपने आश्रम पर लौट आये—एक नई अनुभूति, एक नया आत्म-विश्वास और राष्ट्रोद्धार की एक सुनिश्चित योजना लेकर। उनकी यात्रा सफल थी।

× × × +

: १४ :

ब्रह्मचारी हनुमान का प्रशिक्षण और उपलब्धियाँ

बालक हनुमान की विधिवत् शिक्षा का शुभारम्भ हुआ। मंत्रों और श्लोकों का शुद्धोच्चारण हनुमान की सबसे बड़ी विशेषता थी। उनका सस्वर वेद पाठ श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देता। बालक की वक्तृत्व कला अद्वितीय थी। घन गर्जन को लजाने वाली ओजस्विनी वाणी में जब वह अपने विषय का प्रतिपादन शास्त्रीय उद्धरणों की प्रचुरता के साथ-साथ लोक व्यवहार तथा बुद्धि और विज्ञान के धरातल पर, मस्तिष्क के साथ हृदय को भी छूने वाली मनोरम शैली में करता तो समा बँध जाता, श्रोतागण विस्मय-विमुग्ध हो धन्य-धन्य कह उठते।

गायत्री मन्त्र के विधिवत् अनुष्ठान और प्रवण जाप की पुण्य प्रक्रिया के साथ ही अष्टाङ्ग योग पद्धति से योगाभ्यास भी महावीर हनुमान की दिनचर्या का अविभाज्य अङ्ग था। फलतः उन्हें जिस सूक्ष्मदर्शी मेधा और ऋतम्भरा बुद्धि की उपलब्धि हुई उससे वे गहन से गहन विषय को अति सरलता से हृदयङ्गम करने में समर्थ थे। ऋषि-सुलभ इस मेधा के कारण ही परमेश प्रभु की कल्याणी वाणी —वेद माता के स्तवन (वेदों के अध्ययन) का परम सौभाग्य उन्हें सहज ही प्राप्त था। ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद—चारों वेदों का ऋषि चरणों में विधिवत् अध्ययन कर शब्द के सही अर्थों में वे 'चतुर्वेदी' बन गये। साहित्य के साथ ही व्याकरण शास्त्र में तो ब्रह्मचारी हनुमान की पैठ अद्भुत थी।

ज्ञान-विज्ञान की अन्य विविध शाखाओं—गणित, भूगोल, इतिहास, कला-कौशल, अर्थशास्त्र आदि में भी सामान्य दक्षता प्राप्त करने के अतिरिक्त राजनीति शास्त्र, नीति शास्त्र और धर्म शास्त्र उनके अत्यधिक प्रिय विषय थे।

पर ब्रह्मचारी हनुमान के शैक्षणिक ज्ञान की यह परिसीमा नहीं थी। एक दूसरा क्षेत्र जिसमें उनकी प्रतिभा का सर्वोपरि विकास हो सका, उनकी प्रतीक्षा करता था। वह था खेल का मैदान। तब आज कल जैसे हलके-फुलके फैशनेबल खेल न थे। लम्बी-लम्बी कूदें, मीलों की दौड़ें पर्वत खण्डों को उखाड़कर तथा और उन्हें साथ लेकर पर्वतारोहण और उसके साथ ही मल्ल शाला के अपूर्व करतब!

ब्रह्मचारी हनुमान ने बुद्धि और विद्या के क्षेत्र से भी अधिक बल और शौर्य के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रिय स्तर के मल्लयुद्धों और शास्त्रिय प्रतियोगिताओं में भाग लेकर ब्रह्मचारी हनुमान सर्व प्रथम रहे थे। कई वार पुरस्कृत भी हुए थे, वे। पर विशेषता यह कि इन अभूतपूर्व उपलब्धियों की स्थिति में 'अहं' उन्हें छू तक भी न सका था। विनम्रता और शालीनता जैसे उनकी सबसे बड़ी पूँजी थी। जैसे शक्ति, शील और सौन्दर्य

ी परम पावनी त्रिवेणी उनके ऊर्जस्वित व्यक्तित्व में सतत प्रवाहित हो रही थी। और ले आ रही थी हमारे चरित नायक को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के समन्वित जीवन-ध्येय के समीप।

: १५ :

अवसर की प्रतीक्षा : दीक्षान्त समारोह

ब्रह्मचारी हनुमान अब तक जीवन के २१ बसन्त देख चुके थे। ब्रह्मचर्य की दीप्ति से दीप्तिमान, अगाध ईश्वर निष्ठा और योग साधना के पुण्य तेज से तेजोमय, अदम्य पुरुषार्थ, अतुल बल, अद्भुत पराक्रम एवं अपरिमेय साहस के साथ ही सदाचार और धर्म परायणता की ज्योति से ज्योतिष्मान् वह युवक युवा पीढ़ीका श्रद्धा-भाजन और वयस्कों के निकट अतुल स्नेह का पात्र था। उसके विकसित व्यक्तित्व में भावुकता और विवेक, श्रद्धा और मेधा, मस्तिष्क और हृदय, अध्यात्म और भौतिकता, बल और विद्या, शान्ति और क्रान्ति धर्म और राजनीति, ज्ञान और विज्ञान तथा लोक और परलोकवाद का अपूर्व सामंजस्य था। मूर्तिमान धर्म था, जैसे वह। जो भी उसके सम्पर्क में आता उसका अपना हो जाता, वह अपने को खोकर अन्यों को अपनाता, दिल देकर दिल लेता। युवा पीढ़ी का नेता था, अब तो। युवक उसके एक-एक शब्द पर प्राण निछावर करते थे। माता-पिता, परिजन और पुरजन उसके यशस्वी चरितों को सुनकर फूले न समाते और आचार्य अगस्त्य अपने जीवन की इस सबसे बड़ी निधि और उपलब्धि को देखते तो देखते ही रह जाते। प्रभु को वे कोटिशः धन्यवाद करते। पर अभी उनके आगे का मार्ग और भी जटिल और दुरूह तथा श्रम साध्य था। महर्षि उसके प्रति सजग थे।

ऋषि अगस्त्य के तत्वावधान में युवा पीढ़ी के कुछ तत्व पहले से प्रगतिशील थे पर सर्वथा मौन भाव से। ऋषि स्पष्टतः उस चित्र

में कहीं भी नहीं थे। क्योंकि उनके लिए उससे पृथक रह मौन:
दर्शन ही श्रेयस्कर और लक्ष्य-सिद्धि के लिए हितकर था। ब्रह्म
वज्राङ्गी महावीर हनुमान ने अब स्पष्टतः युवा मण्डलो का नेतृ
संभाल विद्रोह का झण्डा उठा कर 'क्रान्ति चिरजीवी हो' का उद्घो
करना चाहा, पर मुनिवर ने अभी इस क्रान्ति चिंगारी को शा
रहस्यमय रीतिसे भीतर ही भीतर सुलगानेका परामर्श दिया। उन्
रावण और बाली की सम्मिलित शक्ति का संकेत करते हुए क
'अभी हमें उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। तुम्हें सद्य
पुर जाना होगा। पर ध्यान रहे राष्ट्रोद्धार कार्य के लिये तुम्हें
अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत में अडिग रह कर अपनी 'महावीर' सं
सार्थक करना है। तुम पर मुझे पूर्ण विश्वास है।' कहते-कहते
हृदय और ममता-शून्य गुरुदेव के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। आज वे
प्रिय शिष्य को विदा कर रहे थे।

\+ \+ \+ \+

: १६ :

रावण के पक्ष में युद्ध

विद्याव्रत स्नातक बन 'महावीर' हनुमान अब रत्नपुर आ
थे। माता-पिता और प्रजाजनों को प्रसन्नता का पारावार न था
राज्य कार्य में उन्होंने रुचि लेना आरम्भ कर दिया था। प्रजा
व्यवहार, न्याय और नीति-निपुणता से अत्यधिक प्रसन्न और
थी। युवराज हनुमान दीनों और अनाथों के रक्षक, दलितों के
रक, पतितों के उन्नायक, पुण्यात्माओं के सन्मित्र पर पापा
और अन्यायियों के लिये सर्वथा काल रूप थे। वानर राष्ट्र के
धिपति महाराज बाली के पास भी रत्नपुर के माण्डलिक रा
सुव्यवस्था और युवराज हनुमान के न्याय-नीति कौशल तथा वी
धीरता के समाचार पहुँचे, वे भी बड़े प्रसन्न हुए।

समय आगे बढ़ रहा था और उसके साथ ही महावीर हनुमान के नेतृत्व में युवक क्रान्ति की अग्नि निरन्तर फैलती जा रही थी। समय-समय पर इसकी चिंगारियां इधर-उधर की घास-पात को जला डालतीं। धीरे-२ यह समाचार भी महाराज बाली के पास पहुँचे, पर महावीर हनुमान के प्रति अपनी पूर्व धारणा के प्रकाश में उन्हें सहसा विश्वास नहीं हुआ। उन्हें सत्य परीक्षण का एक अवसर भी अनायास मिल गया। लंकापति रावण ने देवराज कुबेर को जीत कर बन्दी बनाने का निश्चय किया और इस कार्य में महाराज बाली से सहयोग की याचना की। बाली ने इसे उपयुक्त अवसर समझ रत्नपुर के महाराज पवन जी को कहला भेजा कि आप अपनी सेना लेकर राजाधिराज रावण का सहयोग करें। उन्हें विश्वास था कि इस कार्य केलिए पितृ-भक्त युवराज अपने होते पवन को कदापि नहीं आने देगा और यदि वह रावण-द्रोह का भाव रखता है (जैसा गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ था) तो वह रावण की सहायता के लिए नहीं पहुँचेगा।

बाली का विचार ठीक था, महावीर हनुमान ने महाराज पवन को नहीं आने दिया। स्वयं भी राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् युवराज ने बड़ी बुद्धि से काम लिया। राष्ट्र निर्माता पुरोहित प्रवर आचार्य अगस्त्य के संकेत पर वीर हनुमान ने स्वयं ही रत्नपुर की सेनासहित रावण की सहायता के लिए प्रस्थान किया। और अपने अद्भुत रण-कौशल से देवराज कुबेर को वन्दी बनाकर रावण की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। स्वयं हनुमान ने रावण से मिलना उचित नहीं समझा। और बाली जो प्रथम दर्शन में ही महावीर के महनीय व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ था, विजय समाचार सुन उसने अब हर्षित हो ...ञ्जी को हृदय से लगा लिया। बाली का सन्देह जाता रहा। पर भीतर ही भीतर क्रान्ति-अग्नि सुलगती रही, बढ़ती रही।

\+ \+ \+

: १७ :

पिता भवति मन्त्रदा

एक दिन जब महावीर सर्वथा एकान्त में सन्ध्योपास
पश्चात् अपने दैनिक स्वाध्याय में निमग्न थे, महाराज पवन ने
स्मात् उनके कक्ष में धीरे से प्रवेश किया। हनुमानजी के समक्ष
पवित्र अथर्ववेद का एक पृष्ठ खुला था। वे उसके ११ वें का
तृतीय अनुवाक के पांचवें सूक्त—का पारायण कर रहे थे और
अर्थ-चिन्तन में ऐसे डूबे थे कि न तो उन्हें पिता जी की उपस्थि
ही भान हुआ और न समय का ही विचार कि पारवारिक सा
अग्निहोत्र (देवयज्ञ) के लिए विलम्ब हो रहा था।

कुछ देर में जैसे ही युवक का ध्यान टूटा, विलम्ब जान
शीघ्रता में उठना चाहा पर तभी उसकी दृष्टि पूज्य चरण पि
पर पड़ी। अपना अहोभाग्य मान उसने उनके चरण स्पर्श
'नमस्ते' निवेदन किया और पिता जी का अतुल स्नेह पूर्ण शु
पाकर स्वयं को कृतार्थ एवं धन्य अनुभव किया। श्री पवन
समीप ही पुत्र को बिठा कर कहा—"हमारे आनन्द वर्धक, सुख
आधार, जीवन-ज्योति स्वरूप प्रिय वत्स! तुम्हारे देवयज्ञ के
कृत्य में अभी तक न पहुँचने पर विलम्ब हुआ जान, मैं इधर
आया और तुम्हें वेद स्वाध्याय-रत पाकर मेरे हर्ष की सीमा न
सौम्य! भगवती वेदमाता का मनोयोग पूर्वक पारायण और
शुभाचरण निश्चय ही त्रिताप हारी और उभय लोकों में
दायक है।

प्रिय पुत्र! मुझे तुमसे एक आवश्यक चर्चा करनी है।
यह समय उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। उन्होंने कई एक प
प्रस्तुत करते हुए बताया कि इन सभी पत्रों में तुम्हारे विवाह
को स्वीकारने का अनुरोध किया गया है। कन्याओं के चि

उनकी विशेषताओं का उल्लेख भी साथ ही अंकित है। प्रिय पुत्र! इन्हें तुम सँभालो और कुछ समय निकाल कर मनोयोग सहित इनका अवलोकन करने के पश्चात् अपनी सम्मति हमें दो, जिससे हम अपने इस आवश्यक दायित्व से निवृत्त होकर अपने वानप्रस्थ की तैयारियों में जुटे। राज्य कार्य तो तुमने प्रायः संभाल ही लिया है और मुझे अत्यधिक हर्ष है कि तुम्हारी सुव्यवस्था और न्याय-नियमन से सभी प्रजा जन तुम्हें अपना देवता मानते हैं, महाराज वाली भी तुमसे अति प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं।

"पिता जी! मैं यह सब क्या सुन रहा हूँ?" पत्रों की ओर तनिक भी दृष्टि किए बिना बड़े विनीत स्वर में आश्चर्य की मुद्रा में महावीर ने कहा। अपने निवेदन का जारी रखते हुए वे बोले— "पिताजी! गुरुदेव ने मुझे एक दिन मेरी जन्म-कथा का इतिहास बताते हुए आपकी और पू० माता जी की तपश्चर्या की जो चर्चा की क्या वह सब कहानी मात्र थी? पर पूज्यपाद पिताजी मुझे तो गुरुदेव ने राष्ट्रोद्धार कार्य के लिए ही निर्मित किया है, उन्होंने मुझे आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा दी है। उनके अनुसार तो आपकी एवं माँ की पूर्ण सहमति इस कार्य में है। क्या यह ठीक नहीं है? अथवा आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं पिताजी?"

और तब पिता ने बड़े प्यार से पुत्र का माथा चूम कर कहा— "मेरे वीर! मैं सच ही तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। गुरु जी का सम्पूर्ण कथन और तुम्हारा विचार सर्वांश में सत्य है। प्रिय पुत्र! यों तो तुम्हें एकान्त में इस तल्लीनता से वेद के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' का पाठ करते देखकर ही परम सन्तोष हुआ था फिर भी इस विषय में तुम्हारे विचार जानना मेरे निकट एक कर्त्तव्य था। आज मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं है। मुझे विश्वास है, मेरे द्वारा हुए व्रत-भङ्ग का प्रायश्चित्त-विधान तुम्हारे रूप में पूर्ण होगा। इससे जहाँ तम पितृ-ऋण से अनृण हो सकोगे वहाँ राष्ट्रोद्धार के देव-कार्य से युगों-युगों

तक तुम्हारी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी। ईश्वर तुम्हारा कर्त्तव्य-प
प्रशस्त करें।'

इसी बीच माता अंजना भी वहाँ उपस्थित हो गई थीं। उन्हों
सम्पूर्ण वृत्त जान पुत्र को हृदय से लगा भूयोभूः आशीर्वाद दिया।
दिशायें और उपदिशायें राष्ट्रकार्य के लिए यों अपने यशस्वी पुत्र क
समर्पित करने वाले दम्पति का जय-जयकार कर रही थीं। "मात
निर्माता, पिता भवति मन्थदा" यह ऋषि वाणी जैसे आकाश में गूं
रही थी।

× × × ×

: १८ :

युवा पीढ़ी का कुशल नेतृत्व

महावीर हनुमान ने राक्षस राज रावण के पक्ष में विजय प्रा
करके भी अपने को पराजित अनुभव किया। विजय-यात्रा से लौट
पर उनका हृदय आत्म-ग्लानि से भर उठा। पर अन्त में इसे
भगवदीय कार्य (राष्ट्रोद्धार योजना) का सोपान मान अपनी वैयक्ति
भावना को दबाकर कर्त्तव्य बुद्धि को ही महत्व दिया। गुरुदेव
अपने प्रिय शिष्य की मनःस्थिति से परिचित थे, पर उन्हें अनुक
अवसर की प्रतीक्षा थी।

एक प्रातः महामुनि अगस्त्य महावीर के साधना कक्ष में उ
स्थित हुए। महावीर उस समय अपनी योग-साधना में लीन थे। ने
खोलते ही उन्हें गुरुदेव के दर्शन हुए तो 'अहोभाग्यं-अहोभाग्यं' कहते
कहते उठ खड़े हुए। विनत अभिवादन कर आशीर्वाद लिया। मह
वीर अब कह रहे थे—"भगवन ! कई दिन से आपका विशेष स्मरण
हो रहा था। दर्शनार्थ मन छटपटा रहा था।"

'प्यारे ! यह मन तो बेतार का तार है। प्रभु की अद्भुत सृ
है यह ! तुम्हारी हृत्तन्त्री से उठे हुए स्वरों ने मेरी हृदय तन्त्री
भी झंकृत कर डाला। कई दिन से यही दशा मेरी थी। आज कु
सन्देश लेकर आया हूँ। प्रियवर ! जिस घड़ी की हमें प्रतीक्षा थी अ

वह आ पहुँची है।" और तब ऋषि ने स्मरण कराया "पुत्र, तुम्हें याद होगा तुम्हारे गुरुकुल प्रवेश के साथ ही हम तुम्हें अयोध्या में महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर ले गये थे। वहाँ तुम्हें चार राजकुमार मिले थे।"

"हाँ, हाँ गुरुदेव ! मुझे याद आ रहा है। बहुत पुरानी बात हो गई। बड़े राजकुमार राम की वीरता और शालीनता मिश्रित सौन्दर्य ने मुझे उनका भक्त ही बना दिया। बहुत दिनों तक तो गुरुकुल लौटने पर भी मैं उन्हें भूल ही नही पाया था। फिर क्या हुआ गुरुदेव ?"

महर्षि अगस्त्यने श्रीराम आदि के जन्मके पीछे भी ऋषियों की योजना का उल्लेख करते हुए महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की राम-लक्ष्मण द्वारा रक्षा, ताड़िका और सुबाहु वध मारीच का भाग जाना सीता स्वयंवर, ऋषियों की योजनानुसार श्री राम का वन-गमन श्रीराम का ऋषि आश्रमों में आगमन और वहाँ आकर ऋषियों के अस्थि-समूह और ध्वस्त आश्रमों को देखकर 'असुर विनाश' कीसत्य प्रतिज्ञा का उल्लेख किया। यह भी संकेत किया कि वशिष्ठ और विश्वामित्र के गुरुकुलों में धनुर्विद्या शिक्षण के बाद भी कुछ विशेष वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति के लिए श्रीराम हमारे आश्रम में भी आयेंगे। तभी मैं तुम्हारा स्मरण भी उन्हें कराऊँगा।

उन्होंने बताया कि "निश्चय ही राम-रावण युद्ध होगा, उसमें तुम्हें अपनी अपूर्व वीरतापूर्ण भूमिका प्रस्तुत करनीं है, फिर एक बात और" महर्षि ने कहा—"वानर राष्ट्र की राजनीति ने भी अभी-२ एक नया मोड़ लिया है। बाली ने सामान्य सी भूल पर अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य से निकाल दिया है। उसकी सुन्दर पत्नी को छीन लिया है और उसे समस्त अधिकारों और सुविधाओं से वंचित कर एक 'खानाबदोश' का जीवन बिताने का बाध्य कर दिया है। बाली महाराज से वानर राष्ट्र की स्वात्माभिमानी और आर्य संस्कृति प्रेमी प्रजा तो उसकी रावण मैत्री से ही असन्तुष्ट थी, अब उसके भाई के

साथ किये गये राक्षसी दुर्व्यवहार और अत्याचार से तो बहुत लोग उसके विरुद्ध हैं। आवश्यकता है इस असन्तुष्ट दल के कुशल नेतृत्व की। युवा पीढ़ी तथा बुद्धिजीवी जनता तुमसे प्रभावित है। सामान्य जनता राज घराने के एक प्रमुख व्यक्ति को आगे देखकर तुम्हारी अनुवर्ती होगी। अतः सुग्रीव को आगे करके तुम बढ़ो। इस बीच मेरा विश्वास है समान हृदय एक दूसरे को खींचेंगे। और घटना-चक्र के अधीन श्रीराम का सहयोग प्राप्त कर तुम बाली पर विजय पाने में सफल हो सकोगे। पश्चात् श्री राम का कुशल नेतृत्व पाकर समूचा वानर राष्ट्र, असुर राष्ट्र को धराशायी करने में अवश्य सफल होगा। यों आसुरी सभ्यता का सर्वनाश होकर वानर राष्ट्र और राक्षस राष्ट्र में वैदिक संस्कृति की विजय वैजयन्ती फहरा सकेगी, पाप-भार से बोझिल धरती माता का भार हल्का हो सकेगा और राष्ट्रोद्धार का अपना जीवन-ध्येय प्राप्त कर स्व-जीवन धन्य करने के साथ ही तुम मेरी तपस्या और साधना को भी सफल कर सकोगे। तो निष्कर्ष यह कि एक क्षण बिना खोये अब तुम क्रान्ति का झण्डा उठाओ।" और गुरु-चरणों का स्पर्श कर महावीर हनुमान ने दूसरे ही क्षण क्रान्ति का बिगुल बजा दिया।

× × ×

: १६ :

क्रान्ति का बिगुल : महावीर का ओजस्वी वक्तव्य

ऋषि आश्रम से कुछ दूरी पर आज एक विराट् 'वानर युवक सम्मेलन' का आयोजन है। पता नहीं कब किस प्रकार से सारे वानर राष्ट्र के संकल्पशील युवकों को इस सम्मेलन की सूचना मिली। किसी को कुछ पता नहीं निश्चित तिथि और समय पर राष्ट्रोद्धार के व्रत में दीक्षित वानर युवक टिड्डी दल की तरह उमड़े चले आ रहे हैं। वे एक बड़ी संख्या में उपस्थित हैं और युवक हृदय-सम्राट महावीर हनुमान उन्हें सम्बोधित कर रहे हैं —

'साथियों ! आप यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं, आपसे छिपा नहीं है। ऋषियों की यह पुण्य भूमि, महान् आर्यावर्त्त के अङ्गभूत अपना यह वानर राष्ट्र आज आसुरी सभ्यता का क्रीत दास बना है। यों कहने को यह हमारा अपना राज्य है, स्वराज्य है पर निश्चय ही यह 'सु-राज्य' नहीं है। यों महाराज बाली जैसा प्रबल पराक्रमी और अद्वितीय शूरवीर हमारा शासक है, पर लङ्काधिपति रावण की वैज्ञानिक उपलब्धियों की चकाचौंध में महाराज के नेत्र चौंधिया गये हैं। रावण ने नये-२ वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों के बल पर जो भौतिक सफलतायें प्राप्त की हैं, उससे उसे उन्माद हो गया है। उसके अहं ने आसमान को छू लिया है। सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व को उसने चुनौती दी है। उसकी सोने की लंका ने उसकी आत्मा को ही सुना दिया है। चारों वेदों और छः वेदाङ्गों का अधेता होकर—या दश शीस' होकर भी रावण ने अपने आचरण द्वारा आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया है। वैदिक यज्ञों को ध्वंस करना और उनके स्थान पर यज्ञों में मांस मद्यादि की आहुतियाँ देना, ऋषियों से कर देने का आग्रह करना, उसके अभाव में उन्हें अनेक विध शारीरिक कष्ट देना तथा ऋषि आश्रमों को उजाड़ना जैसे राक्षस-सैन्य का नित्य कर्म बन गया है। मांस और शराब के दौर चलते हैं। पापी रावण ने अनेक देवियों—सुन्दरियों को अपनी अंकशायिनी बना उनका सतीत्व नष्ट किया है। चतुर्दिक अनाचार और वामाचार का बोलबाला है।

हमारे महाराज बाली यद्यपि इतने समर्थ और सशक्त हैं कि एक बार उन्होंने इस पापी को छः महीने अपनी कैद (काँख) में रखा था। पर पश्चात् न जाने क्यों उन्होंने इसके साथ सन्धि कर ली। इतना ही नहीं हमारे महान् राष्ट्र की पवित्र भूमि में कई स्थानों पर राक्षसों को सैनिक छावनियाँ बनाने की अनुमति भी उन्होंने दे डाली। परिणाम हमारे सामने है। इस ऋषि भूमि में आज, ऋषियों का आर्त्तनाद सुनाई पड़ रहा है। हमारी माँ-बहिनों की लाज सुरक्षित

नहीं है। हमारी नई पीढ़ी मांस-मदिरा आदि अनेक-२ दुराचारों का शिकार होती जा रही है। पूर्वजों का मखौल उड़ाया जाता है और विज्ञान के नाम पर प्रच्छन्न भौतिकवाद की पूजा ने मनुष्य को हृदय-हीन तथा पशु से भी पतित बना दिया है, परमपुनीत वैदिक संस्कृति के खण्डहरों पर आसुरी सभ्यता का यह ताण्डव नृत्य अब सर्वथा असह्य है। वीरो उठो! कर्त्तव्य के आव्हान और समय की पुकार को सुनो! प्यारी मातृभूमि की यह मानसिक दासता, यह बौद्धिक गुलामी और यह सांस्कृतिक विनाश की राहें जिन्हें स्वीकार नहीं हैं, जिन्हें शरीर के साथ ही आत्मा से भी प्यार है वे आयें और बलिदान की राह में हमारे साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ें।"

उसी भावावेश के साथ महावीर कर रहे थे—"हमने क्रान्ति का झण्डा उठाया है। यह झण्डा धर्म का झण्डा है, सत्य और न्याय का झण्डा है, यह प्रेम और सद्भाव का झण्डा है, संस्कृति और सदा-सदाचार का झण्डा है। अपने बच्चों के समान ही जो राष्ट्र के शत-शत बच्चों के भविष्य को प्यार करते हैं, अपनी मां-बहिन के तुल्य हो जिनके राष्ट्र की हर नारी उनकी अपनी मां-बहिन है, वे आयें हम दीवनों के साथ। समय आ गया है जब मातायें अपने वीर पुत्रों को, बहिनें अपने भाइयों को और कुल वधूयें अपने सिन्दूर को राष्ट्र यज्ञ में हवि बनायें—शत-सहस्र बहिनों के सिन्दूर और सम्मान की रक्षा के लिए। हमारा संकल्प है हम इस अनाचार इस कदाचार और इस बौद्धिक दासता एवं सास्कृतिक पराधीना को मिटाकर ही चैन लेंगे। हम क्रान्ति ही नहीं संक्रान्ति चाहते हैं—सम्यक् क्रान्ति! यों ही व्यर्थ की गद्दियों की उलट फेर नहीं, साँस्कृतिक क्रान्ति—संक्रान्ति!

. एक साथ शत शत कण्ठों ने महावीर का साथ दिया-संक्रान्ति चिरजीवी हो, मानवता अमर है!! संसार के श्रेष्ठ पुरुषो एक हो!!

: २० :

पद्मरागा का अश्रुतपूर्व तप

युवा शिरोमणि महावीर हनुमान की ओजस्वी वक्तता के क्रान्ति स्वर जैसे सम्पूर्ण वानर राष्ट्र में गूंज उठे। हनुमान को तेजस्वी वाणी को, उसके क्रान्ति-आह्वान को सारे राष्ट्र ने सुना और सुना पद्मरागा ने भी।

पद्मरागा! महाराज बाली के जनुज सुग्रीव के सेनाध्यक्ष नील की एक मात्र पुत्री। मान्धे किन्हीं विशेष तन्तुओं से उसका निर्माण हुआ हो। वचपन से ही सर्वथा निस्पृह, निरीह अपने आप में डूबी सी, खोई सी। चरम सौन्दर्य के साथ ही प्रभु-परायणता, शिष्टता, शालीनता और विनम्रता की महानिधि सँभाले, यौवन की देहलीज में प्रविष्ट। एक हो चाव था उसका—वेदाध्ययन। एक ही कार्यक्रम था उसका—राष्ट्रोद्धार—चिन्तन। यह सब पूर्व जन्म के संस्कार का ही परिणाम था।

पद्मरागा अब पर्याप्त सयानी हो चली है। कितनी ही बार उसकी माता स्वयं तो कई बार उसकी आचार्या पण्डिता बुद्धिवन्ती द्वारा उसे अनेकों वीरों और पण्डितों के चित्र बताकर उनमें से किसी के साथ विवाह करने की प्रेरणा कर चुकी थीं, पर निष्फल। यों माता-पिता पद्मरागा के आचार-व्यवहार, विद्वत्ता और राष्ट्र प्रेम के लिए गर्वानुभूति करते हुए भी उसके भविष्य के विषय में स्वभावतः चिन्तित-प्राय रहने लगे थे। × ×

पद्मरागा अपने कमरे में अकेली है। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त का पाठ कर रही है, वह। मातृभूमि और धरती माता के प्रति भक्ति की तरंगें उसके अन्तर्मानस में हिलोरें ले रही हैं। "प्रभो! वह मंगल घड़ी कब आयेगी जब मेरे महान राष्ट्र की बौद्धिक दासता समाप्त हो यहाँ एक मात्र विश्व संस्कृति—वैदिक संस्कृति का साम्राज्य होगा, भगवन्! क्या मैं राष्ट्रोद्धार के इस महायज्ञ में अपनी हवि दे सकूँगी?

और तभी जैसे राष्ट्र के सम्पूर्ण वायु मण्डल में तैरते हुए युवक नेता हनुमान के ये स्वर उसके अन्त:प्रदेश में प्रतिध्वनित हो उठे, मानो आकाशवाणी हुई❀ "समय आ गया है जब मातायें अपने वीर पुत्रों को, बहिनें अपने नृसिंह भाइयों को और देवियाँ --कुलवधुयें अपने सिन्दूर को राष्ट्र यज्ञ की हवि बनायें—शत-सहस्र बहिनों के सिन्दूर, सतीत्व और सम्मान की रक्षा के लिये।"

पुस्तक खुली की खुली थी। पद्मरागा अब विचार-लोक में थी। "हमारे युवक नेता ने आह्वान किया है! पर मैं तो एक भाई के अभाव में बहिन का कर्त्तव्य भी नहीं निभा सकती। तब मैं ··· मैं कैसे राष्ट्र-यज्ञ में अपनी हवि दूँ? विचारों में वह गहरी डूब गई। और तभी घन-घटाटोप के बीच बिजली की भाँति सहसा एक विचार उसके हृदयाकाश में कौंध गया। पर साथ ही एक प्रश्नवाचक चिन्ह भी—"क्या उस राष्ट्र देवता को अपने महाव्रत को भङ्ग कराने के लिए प्रेरित करना मेरे निकट जघन्यतम पाप नहीं होगा? उसका मन आत्म ग्लानि से भर उठा, ऐसा दुस्सह दुर्विचार मेरे मन में आया भी तो क्यों? और उसने अपने अन्तर में गहराई से झाँका। उसे सन्तोष हुआ, उसके अन्तर के किसी कोने में भी भौतिक सुख भोग की लालसा का एक कण भी न था। तब क्या हम लोग आजन्म किसी प्रकार का शारीरिक सम्बन्ध न रखकर केवल राष्ट्रोद्धार के समान व्रत के आधार पर परस्पर को वरण नहीं कर सकते? और विदुषी पद्मरागा को स्वयं ही समाधान भी मिल गया। अत्यधिक पवित्र उदात्त और उच्चादर्श होते हुए भी गृहाश्रम की शास्त्रीय मर्यादा के अनुकूल नहीं होगा, हमारा यह आचरण। तब·······तब एक ही मार्ग है--"मैं भी महावीर हनुमान की भाँति आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का व्रत ग्रहण करूँ और वीर हनुमान की भाँति ही तपस्या की कठोरतम राह पर चलते हुए उसकी एक आदर्श बहिन के रूप में

❀ अन्त: प्रेरणा को ही काव्य की भाषा में 'आकाश वाणी' कहा गया है।

राष्ट्र जीवन में प्रवेश करूँ। क्या राष्ट्र के महायज्ञ में मेरी यह कवि एक सुन्दर हवि न होगी ?" पद्मरागा को समाधान मिल चुका था।

इन्हीं विचारों में डूबती उतराती वह पुनः पृथिवी सूक्तके पारायण में निमग्न होगई। इसी बीच उसकी पूज्या आचार्या—पण्डिता बुद्धिवन्तीजी ने उसके कमरे में प्रवेश कर उसे चौंका दिया। अपनी प्रिय शिष्या को वेदाध्ययनमें निरत पा आचार्याजी को परम प्रसन्नता हुई। पद्मरागा ने चरण स्पर्श किया। अपनी शिष्या को आज विशेष प्रसन्न मुद्रा में देखकर आचार्याजी आशिष के वचन भी भूल बोलीं- "पुत्री ! यों आज तुम्हारी प्रसन्नता का क्या कारण हो सकता है ?" "आचार्याजी ! क्या आपने नहीं सुना ? वानर राष्ट्र को बौद्धिक दासता से विमुक्त कर परम पवित्र वैदिक संस्कृति का ध्वज फहराने के लिए अंजनीकुमार वज्राङ्गी महावीर हनुमान ने क्रान्ति का बिगुल बजाया है। और तब इस सन्दर्भ में उसने अपना सम्पूर्ण मनोगत आचार्या जी को प्रगट कर दिया।

आचार्याजी एक बार तो जैसे स्तम्भित रह गईं वह सब सुनकर। पर वे अपनी शिष्या के स्वभाव और निश्चय की दृढ़ता के विषय में जानती थीं, अतः केवल इतना ही कह सकीं—"पुत्री तुम्हारा विचार निश्चय ही शुभ है। पर क्या तुम जानती हो यह राह कितनी दुरूह और कितनी अगम्य है, विशेषतया स्त्रियों के लिए।"

"आचार्या जी !" बड़े विनीत स्वर में पद्मरागा कह रही थी - "तब क्या, मुझे यह मानना चाहिए कि इतने समय आपके श्रीचरणों के सान्निध्य में रहकर भी आप अपनी शिष्या को नहीं जान सकी हैं ? और नारी ! क्षमा करें आचार्याजी, आपने ही तो एक बार बताया था कि वह महा शक्ति है। वह पुरुष की जननी ही नहीं, निर्मात्री भी है। वह पुरुष की प्रेरणा स्रोत है—पत्नीके रूप में, माँ के रूप में और एक बहिन के रूप में भी। नारी जिस क्षेत्र में भी दृढ़ निश्चय से आगे बढ़े, आश्चर्यजनक उपलब्धियां प्राप्त कर सकती है। पूज्या आचार्याजी ! क्या आपने ही नहीं बताया था कि ऋषियों को

भांति अनेकों ऋषिकाओं ने भी पवित्र वेदों के मन्त्र दर्शन तक का सौभाग्य लाभ किया है ? फिर रणक्षेत्र या राजनीति के क्षेत्र में भी नारी ने क्या नहीं किया और क्या नहीं कर सकती ? और आजन्म ब्रह्मचर्य रखने वाली ब्रह्मवादिनी नारियां भी तो इस महान् देश की मिट्टी में जन्म ले चुकी हैं। आप अपनी शिष्या पर विश्वास कीजिये, आचार्या जी !"

इसके आगे पण्डिता बुद्धिवन्तीजी के पास कहने को कुछ नहीं था, उन्होंने केवल इतना प्रस्ताव किया—पुत्री ! ठीक है जब तुम्हारा ऐसा ही ध्रुव निश्चय है तो मैं किसी प्रकार तुम्हारी माताजी और पिताजी को संतुष्ट करूँगी ही। किन्तु अपने निश्चय के क्रियान्यन एवं व्रत-दीक्षा के लिए तुम्हें महर्षि अगस्त्य की अनुमति और मार्ग दर्शन प्राप्ति के लिए मेरे साथ उनके आश्रम चलना होगा।

पद्मरागा की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। आचार्याजी ने उसकी माता को अपनी कुशलता से सन्तुष्ट किया, उनकी एक मात्र संतान द्वारा स्वयं को राष्ट्र हितार्थ समर्पित करने के सौभाग्य के लिए उन्हें पुण्यकृती बताया। अब पद्मरागा और आचार्याजी महर्षि आश्रम में उपस्थित थीं। सम्पूर्ण वृत्त जानकर मुनिवर अगस्त्य कह उठे 'अब राष्ट्र और मानवता का भाग्योदय निश्चित है।' परीक्षा के लिए उन्होंने पद्मरागा से प्रश्न किया—'पुत्रि ! तुम महावीर हनुमान की आदर्श बहिन के रूप में अपने महान् दायित्व को किस प्रकार निभाना चाहोगी ?"

'आचार्य प्रवर ! यह मार्ग-दर्शन तो आपने ही करना है किन्तु मैं सोचती हूँ कि पूज्य भ्राता हनुमान जी की भाँति ही उनके दल के हर सैनिक को तिलक दे मैं राष्ट्र रक्षार्थ प्रोत्साहित करूँगी। इतना ही नहीं वीर सैनिकों की मांओं, बहिनों और पत्नियों का मनोबल ऊँचा करते हुए अपने नेता महावीर का यह सन्देश "समय आ गया है जब........' सुनाऊँगी। और इस प्रकार वे माँ-बहिनें हँसते-२ देश की युवा शक्ति को संस्कृति रक्षार्थ कर्म-क्षेत्र में भेज सकें, वह भूमिका

तैयार करूँगी। युद्ध में हताहत वीरों के परिवारों की देवियों को सान्त्वना दूँगी, गुरुदेव ! आपकी आज्ञा होगी तो मैं महिला कार्यकर्त्रियों के तत्वावधान में घायलों की शुश्रूषा के लिए परिचर्या-शिविरों का संचालन करूँगी और यदि देश की युवा पीढ़ी का रक्त ठंडा पड़ेगा तो वानर राष्ट्र की महिला शक्ति का कवि के शब्दों में आह्वान करूँगी –

"सबल पुरुष यदि बनें भीरु तो मच जाए घमसान सखी,
पन्द्रह कोटि असहयोगिनियां दहला दें ब्रह्माण्ड सखी।"

"धन्य-धन्य ! पुत्री तुम धन्य हो ! तुम्हारा यह विचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसका हम लोगों को ध्यान तक नहीं था। निश्चय ही युद्ध केवल युद्ध भूमि पर ही नहीं लड़ा जाता। युद्ध देश की समूची जनता लड़ती है। किसान खेत में अधिक अन्न उपजाकर, वैज्ञानिक नये-२ आविष्कार करके-- फैक्टरियों में युद्धास्त्रों का बड़े परिमाण में निर्माण करके और व्यापारी अनुचित मुनाफे का विचार छोड़, उचित मूल्यों पर देश की जनता को सभी वस्तुयें देकर युद्ध की विजय में अपना योगदान करता है। सामान्य नागरिक अनुशासन और युद्ध-नियमों का पालन करते हुए अफवाहों से बचकर मनोबल को ऊँचा बनाये रखकर भी वही कार्य करता है तो निश्चय ही घरों में बैठी हुई महिलायें अपने वीर पुत्रों, भाइयों और पतियों के लिए प्रभु से मंगल कामना करती हुईं और उन्हें हंस-२ कर रणक्षेत्र के लिए प्रस्थित करके राष्ट्र की महतो महान् सेवा साधना करती हैं। पुत्रि ! मुझे तुम्हारी कर्त्तव्य क्षमता में पूर्ण विश्वास है। और तब उन्होंने आचार्या बुद्धिमन्ती जी को सम्बोधित करके कहा—"आचार्या जी ! ऐसी सुयोग्य, कर्त्तव्य परायणा और राष्ट्र सेवार्थ सर्वस्व होम करनेके लिए समर्पित शिष्या के निर्माण के लिए आपको कोटिशः धन्यवाद है। आपकी शिष्या व्रत-दीक्षा की पूर्ण अधिकारिणी है।

महावीर हनुमान जी संयोग से उस समय आश्रम में ही उप-

स्थित थे, और निकट ही कहीं छिपकर यह सम्पूर्ण वार्ता सुन रहे थे, अब स्वयं को रोक न सके। सभी के आश्चर्य और कौतूहल को बढ़ाते हुए वे आचार्य चरणों में उपस्थित हो, महामुनि की आज्ञा से. पद्मरागा को सम्बोधित कर बोले—'पद्मरागा बहिन ! तुमने मेरे जीवन के सूनेपन को भर दिया है। यह ठीक है कि तुमने माँ अंजना के गर्भ से जन्म नहीं लिया है, पर तुम्हें एक धर्म बहिन के रूप में स्वीकार कर मैं स्वयं को गौरवान्वित पा रहा हूँ। बहिन का सम्बन्ध संसार के किसी भी अन्य सम्बन्ध से—हां, माँ और पत्नी के सम्बन्ध से भी कहीं अधिक पवित्र, अधिक मधुर, अधिक निःस्वार्थ और अधिक महनीय है। मुझे तुम्हारा भायत्व सहर्ष स्वीकार है। बहिन ! तुम्हारा कर्मक्षेत्र घर है। तुम्हारे भाव सर्वथा स्पृहणीय हैं, पर विश्वास रखो तुम्हें युद्ध भूमि में जाने की आवश्यकता नहीं होगी। तुम्हें अपने भाई के पौरुष में विश्वास है, देश की युवा शक्ति में विश्वास है। उनके परिवारों को तुम्हें संभालना है, देवियों का मनोबल ऊँचा रखना है।

तुम्हारी जैसी वीर और विदुषी बालायें जिस देश में हों उसके उद्धार में अब विलम्ब नहीं है। तो आओ बहिन, बढ़ो आगे। तिलक करो अपने भाई का—कर्त्तव्य क्षेत्र में प्रस्थान करने के लिए ताकि देश की कोटि-२ बहिनें तुम्हारा अनुकरण कर सकें। यही तुम्हारा राष्ट्रोद्धार व्रत-दीक्षा का समारम्भ होगा।

और तब सभी ने देखा एक आदर्श बहिन ने एक आदर्श भाई को हर्षाश्रुओं से नहला दिया। पद्मरागा के ये आँसू कृतज्ञता के आँसू थे। महावीर हनुमान की बहिन के रूप में सचमुच वह धन्य हो उठी थी। और तभी आचार्य एवं आचार्या जी ने दोनों को कर्त्तव्य क्षेत्र में प्रस्थान करने का आदेश दिया।

दिशायें वज्राङ्गी हनुमान के पौरुष और राष्ट्रप्रेम का कीर्ति गान करने के साथ ही और भी ऊंचे स्वर में देवी पद्मरागा की अश्रुतपूर्व तपश्चर्या का जय-जय गान कर रही थीं।

ओ३म्

शुद्ध हनुमच्चरित

[खण्ड २]

कर्त्तव्य के प्रांगण में

*

राम-सुग्रीव मैत्री

*

सीता की खोज

*

लङ्का-विजय

चक्रवर्ती वैदिक संस्कृति साम्राज्य,

अथवा

राम राज्य

पूर्व वचन

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतँ समाः ।
एवं त्वयि नाऽन्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

—यजुर्वेद ४०।२।

परम पावनी कल्याणी वेदमाता द्वारा स्वयं परमेश प्रभु अपने अमृत पुत्र मानव का निर्देश करते हैं—

मानव ! तू कर्म करता हुआ ही (कर्मयोगी बनकर ही) सौ वर्ष तक जीये, ऐसी इच्छा कर । अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षण तक एक भी श्वास शेष रहने तक तुझे कर्त्तव्य-रत रहना है । तुझे आलस्य और अकर्मण्यता की प्रतीक चारपाई में प्राण-त्याग नहीं करना किन्तु कर्त्तव्य कर्म और पुरुषार्थ की द्योतक भूमि पर महा प्रयाण करना है । ॐ

प्यारे मानव ! याद रख, कर्मों का यह बन्धन भी (जिसके कारण तू आवागमन के चक्र में आया है) कर्म के द्वारा—अनासक्त या निष्काम कम के द्वारा ही कटेगा । बन्धन-मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग है ही नहीं ।

पर बिना कामना या आसक्ति के तो कोई कर्म सम्भव ही नहीं है ? तब निष्काम कर्म का क्या अर्थ ? यही कि हमारा प्रत्येक कर्म ईश्वर की आज्ञा के पालन के रूप में हो ! हम ऐसा कोई कार्य न करें जिसके लिए परमेश प्रभु ने अपनी अमर वाणी वेद में निषे[illegible]

ॐ इसीलिए वैदिक संस्कृति में प्राण-त्याग रहे व्यक्ति को चारपाई से भूमि पर ले लेते हैं ।

किया हो, हम वही कार्य करें जिसकी आज्ञा वेद में है—फिर भले ही जय हो या पराजय, लाभ हो या हानि, यश हो या अपयश। दूसरे शब्दों में हमारा प्रत्येक कर्म भगवान् की प्रजा की सेवा के रूप में हो। इसी का नाम ईश्वरार्पित बुद्धि से किया गया कर्म है। इसी का नाम लोक-संग्राहक कर्म है और इसी को 'यज्ञ' कर्म कहते हैं। यज्ञ कर्म—लोक हित के लिए परोपकार वृत्ति या निस्वार्थ बुद्धि से किये गये कर्म जनता जनार्दन की सेवार्थ राष्ट्र के अज्ञान-नाश, अन्याय नाश या अभाव-नाश के रूप में किये गये कर्म--ही जन्म-जन्मान्तर के कर्म-बन्धन को काट सकते हैं। यह कर्त्तव्यानुष्ठान ही सच्ची प्रभु-भक्ति है।

यह कर्म योग ही प्रभु-प्राप्ति का साधन है, अन्य नहीं। हमारे पूर्वज-ऋषि, मुनि, महात्मा सन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, और ब्रह्मचारी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी इस जन सेवा या राष्ट्रसेवा रूप कर्मयोग की साधना करते थे। ईश्वर भक्ति अकर्मण्यता या निठल्लेपन का पर्याय न थी, तब। संन्यासी का अर्थ कर्त्तव्य-त्याग नहीं, किन्तु राष्ट्र-हितार्थ अपने व्यक्तिगत हितों को अथवा अपने कर्त्तव्य क्षेत्र को और अधिक व्यापक करना था। महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र और महामुनि अगस्त्य एवं वाल्मीकि आदि इसके उदाहरण हैं। श्री राम, श्री कृष्ण और महावीर हनुमान के अतिरिक्त माता सीता सावित्री और देवी पद्मरागा भी इसी के अन्यतम उदाहरण हैं। मध्य युग में महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महात्मा कबीर, गुरुनानक गुरु गोविन्दसिंह और वर्तमान में महर्षि दयानन्द, महात्मा गान्धी, नेताजी सुभाष, और श्री शास्त्री जी आदि ने इसी राह पर चलकर प्रभु का प्यार प्राप्त किया है।

आयें हम भी अपने इन महापुरुषों को मन्दिर की मूर्ति न बना कर, कर्मयोग की राह पर चल इनकी सच्ची पूजा करें। और इस प्रकार महावीर हनुमान से हम कर्त्तव्य के प्राङ्गण में बढ़-बढ़ कर कौशल दिखाना सीखें।

: १ :
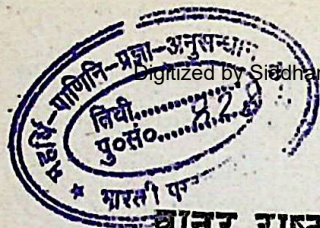
वानर राष्ट्र की राजनीति में प्रवेश

हनुमान का तप-त्याग और उनकी अनुपम साधना रंग लाई पद्मरागा की तपश्चर्या प्रतिफलित हुई। अब तक 'युवा वानर द का निर्माण हो चुका था। महावीर हनुमान इसके नेता थे। 'सि बाँध कफनवा हो, चली वीर शहीदों की टोली' का मस्ताना रा अलापते हुए राष्ट्र की युवा शक्ति हनुमान जी के नेतृत्व में जमा हो रही थी। आततायी राक्षसों पर छुट पुट हमले कर उन्हें राष्ट्र की पवित्र भूमि छोड़ने के लिए बाध्य करना तथा ऋषि आश्रमों को रक्ष —आरम्भ में यही उनका मुख्य कार्यक्रम था। शीघ्र ही यह द पद्मरागा के माध्यम से स्वयं महाराज बाली के छोटे भाई सुग्रीव के प्रस्ताव पर उनके सैन्य के साथ जा मिला। अब महावीर हनुमा सुग्रीव के प्रधान मन्त्री थे। सुग्रीव यदि हनुमान जैसे बुद्धि, विद्य शौर्य साहस और पराक्रम के धनी मन्त्री को पाकर कृतार्थ हो उठे तो महावीर के निकट भी किष्किन्धा की राजनीति में सीधा भाग ले सकने का यह स्वर्ण अवसर था।

बाली के पास अपार सैन्य शक्ति तो थी ही वह स्वयं भी अपने समय का अद्वितीय वीर था। महावीर हनुमान के परामर्श के अनुसा सुग्रीव ने बाली के साथ सीधे युद्ध करना उपयुक्त न समझकर 'गुरि ल्ला युद्ध' की नीति को ही हितकर समझा। वे कभी किसी पर्वत पर तो कभी किसी पर्वत पर अपने अल्प कालिक युद्ध शिविर रचाते अवसर देखकर आक्रमण करते। कभी जम जाते तो कभी भाग ख होते। युद्ध की इस नीति से बाली बड़ा परेशान हो चला था।

इन दिनों सुग्रीव हनुमान और उनके सहयोगियों का यु शिविर ऋष्यमूक पर्वत पर लगा था। एक सांय जब वे अपनी यु योजनाओं में व्यस्त थे, अनायास एक देवी का करुण-क्रदन उन

कानों में टकराया। साथ ही एक वेगगामी वायुयान की ध्वनि भी। उन्होंने ऊपर की ओर देखा ही था कि उन्हें कुछ वस्त्र और आभूषण अपनी ओर आते दीख पड़े। तत्परता से उन्हें संग्रह कर रख लिया गया। हृदय विदारक आर्त्तनाद के बीच देवी द्वारा उच्चरित 'हा राम ! हा लक्ष्मण ! शब्द भी उन्हें स्पष्ट सुन पड़े।

महावीर हनुमान इन शब्दों को सुनते ही चौंक कर उठ खड़े हुए। पर तब तक वायुयान दूर निकल चुका था. उसका कोई प्रतिकार भी शक्य नहीं था। बुद्धि-सागर एवं राजनीति-विशारद हनुमान को यह समझते देर नहीं लगी कि हो न हो आकाश मार्गसे जाने वाली यह राम पत्नी सीता है। राम के वन आगमन और उनकी ऋषि रक्षण-प्रतिज्ञा के विषय में वे गुरुदेव द्वारा विस्तार से सब कुछ जान चुके थे। अतः उनके लिए यह अनुमान करना अधिक कठिन न था कि श्रीराम का राक्षस-विनाश कार्य आरम्भ हो चुका है और उसी संदर्भ में किसी राक्षस (बहुत सम्भव है स्वयं रावण द्वारा) यह सीता-हरण जैसा घोर कर्म किया गया है। सुग्रीव को भी एकान्त में उन्होंने इस सम्पूर्ण रहस्य का संकेत किया। वे अब इस बात के लिए यत्नशील थे कि किसी प्रकार श्री राम की उनसे भेट हो। मानो उनकी आँखें श्री राम-लक्ष्मण को खोजने लगीं। महावीर हनुमान के मस्तिष्क में आगे की सम्पूर्ण योजना और उसका पूरा चित्र था। उन्हें यह भी विश्वास था कि गुरुदेव ने श्री राम को उनके युवक सगठन और बाद में महाराज सुग्रीव के साथ मिलकर किये गये राष्ट्रोद्धार के प्रयासों के विषय में भी अवश्य बताया होगा। और यों श्रीराम को भी हमारी खोज होगी।

: २ :

वह दिन भी आ गया

अन्ततः वह दिन भी आ पहुँचा। प्रातः का समय था। सुग्रीव एवं महावीर हनुमान तथा अन्य वानर वृन्द मिलकर दैनिक यज्ञ करने

की ही थे, सुग्रीव को दूर से ही शैल शिखर की ओर बढ़ती
दो तेजस्वी मानव मूर्तियां देख पड़ीं। उनकी ओर संकेत करते
उसने वीर हनुमान को कहा— 'महावीर ! देखिये वे कौन हैं
महावीर का हृदय तो हर्ष से नाच उठा। हर्ष-विभोर हो बोले-'
वही, जिनकी हमें प्रतीक्षा है।" यद्यपि हनुमान को बाल्यावस्था
भेंट के समय के राम सर्वथा विस्मृत ही हो गये थे। फिर भी
उनकी ओजस्वी आकृति, उनके धनुष-बाण और महर्षि अगस्त्य द्वा
निर्देशित अन्य विशेषताओं के प्रकाश में यह पूरी तरह जान सके
ये दोनों प्रवीर राम-लक्ष्मण ही हैं।

"पर महावीर ! राजनीति का ऐसे अवसर पर क्या निर्देश है
सोलहों आने यह विश्वास होने पर भी कि ये राम और लक्ष्मण
हैं, क्या यहाँ आने से पूर्व परीक्षण उचित न होगा ? कहीं.........

आपका आशय है, कहीं ये दुःख के मारे बाली से ही जा मि
हों और अब बाली के संकेतानुसार हम लोगों के सर्वनाश के लिए
रहे हों ? पर महाराज ! श्री राम के साथ बहुत बचपन में कुछ दि
मैं रहा था, उनकी प्रकृति का पुण्य प्रभाव अभी तक मेरे मानस
है। फिर उनका राक्षस-नाश का व्रत तो सर्व विदित है। बाली
उनकी दुरभिसन्धि शक्य है ही नहीं। फिर भी मैं राजधर्म और
के आदेश का पालन करूँगा।"

: ३ :

हनुमान की राम से भेंट

देखते-देखते महावीर ने सैनिक वेश उतार अपने को ब्राह्
के वेश से सज्जित कर लिया। और दसरे ही क्षण वे श्रीराम-लक्ष्
के समीप थे।

श्री रामचन्द्र के समीप पहुँचते ही उनकी धुंधली-२ स्मृति जैसे निखरने लगी। उनकी खोई स्मृति उनका साथ देने लगी। अनि बाल्यकाल में अयोध्या प्रवास के एक-२ चित्र जैसे उनके नेत्रों में तैर गये। फिर श्री राम की शौर्य मिश्रित शालीनता, उनका अनुपम सौन्दर्य और उनके मानस में सीता-वियोग-जन्य गहन वेदना की स्पष्ट छाप बुद्धि-निधान महावीर से छिपी न रही। राजनीतिके महापण्डित हनुमान ने फिर भी अपने मनोभावों को छिपाया।

बड़े विनीत भाव से श्री राम-लक्ष्मण को प्रणाम कर उनके प्रति उचित पूजा और प्रशंसा के भाव व्यक्त करते हुए महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में वे बोले—'हे राजर्षे ! देव समान तेजस्वी महात्मन् ! आप तपस्वियों के वेश में इस नदी एवं वन की शोभा बढ़ाते हुए, सुवर्ण समान देह वाले सुन्दर धनुषों को धारण कर, वन्य जीवों को त्रसित करने वाले, धैर्य की मूर्ति, सिंह समान पराक्रमी, सूर्य और चन्द्र के सम तेजस्वी कौन हैं और इधर कैसे पधारे हैं ?" गोस्वामी जी के शब्दों में —

को तुम श्यामल गौर शरीरा ❀ क्षत्रिय रूप फिरहु वन वीरा।
कठिन भूमि कोमल पद गामी ❀ कवन हेतु वन बिचरहु स्वामी॥

और उत्तर में जब उन्होंने श्री राम से सुना—

हंसि बोले रघुवंश कुमारा ❀ विधि कर लिखी को मेटनहारा।
कौशलेश दशरथ के जाये ❀ हम पितु वचन मानि वन आये॥
नाम राम-लक्ष्मण दोउ भाई ❀ संग नारि सुकुमारि सुहाई।
इहाँ हरी निसिचर वैदेही ❀ खोजत फिरहिं विप्र हम तेही॥

—तो महावीर गद्गद् हो ज्यों ही श्री राम का चरण स्पर्श करने लगे, भगवान् राम ने उन्हें बांहों में भर लिया और बोले—

"विप्रवर ! यह आप क्या करने लगे हैं ?"

श्रीराम ने महावीर हनुमान के प्रथम दर्शन में ही अपनी पूर्व स्मृति के आधार पर उन्हें पहचानने का यत्न किया था, फिर महर्षि अगस्त्य ने भी उनके विषय में सब कुछ बता दिया था। पर हनुमान

के विप्रके भेष ने उन्हें धोखे में डाल दिया था। इसीसे वे बोले-'देव आप अपना परिचय तो दीजिए।" इतना सुनना था कि हनुमान बर-बस उनके चरणों में गिर पड़े। बोले-'भगवन्! आप अपने भक्त को क्यों कर भूल गये? मेरी आयु तब तो केवल ७ वर्ष की थी, फिर मैं अज्ञ और जड़वत् हूँ। पर आप तो तब किशोर थे जब अयोध्या स्थित महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में मैं आपके साहचर्य में रहा था। और आप तो सुविज्ञानी हैं, अपने चरणों में प्रगाढ़ प्रीति रखने वाले अपने इस बाल्य कालीन भक्त को आपने कैसे भुला दिया, प्रभो!"

श्री राम ने पुलकित हृदय हनुमान को गले लगाते हुए कहा— "मेरे आत्मस्वरूप प्रिय हनुमान जी! आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ। पहचानने का यत्न भी किया था, पर तुम्हारे इस विप्र वेश ने मुझे भ्रम में डाल दिया। बन्धु! उठो तुम तो मेरे निकट भरत और लक्ष्मण सदृश प्रिय हो।"

हनुमान ने तब आदर भरे शब्दों में अपना और सुग्रीव का परिचय देते हुए कहा—

युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्॥ कि० ३।२२

"हमारा राजा सुग्रीव है। वह आपसे मित्रता चाहता है। वह बड़ा धर्मात्मा और विद्वान् है और मैं पवन पुत्र उसका मन्त्री हूँ।"

यह सुन कर श्री राम बोले, "लक्ष्मण! देखो यह सुग्रीव-मन्त्री हनुमान कैसे चतुर तथा विद्वान् हैं और कैसी कल्याण भरी स्पष्ट वाणी बोलते हैं। इतनी देर बोलने पर भी कोई शब्द असंस्कृत (अशुद्ध) नहीं बोला। निश्चय है कि यह वेद और वेदाङ्गों के पर्ण-पण्डित हैं, क्योंकि—

नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।

बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषःसंविदितःक्वचित् ।३०॥
संस्कारक्रमसंपन्ना मद्भुतामाविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥३२॥
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु ।
सिद्धयन्ति हि कथंतस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥३४॥

—किष्किन्धा काण्ड सर्ग ३

—बिना ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद के जाने ऐसा कोई नहीं बोल सकता । निस्सदेह इन्होंने अनेक बार व्याकरण पढ़ा है और यह बड़े सभ्य, सुशिक्षित तथा संस्कार करने वाले माता-पिता के नियम पूर्वक जीवन-व्रत रखने वाले पुत्र हैं । इनके मुख, नेत्र, मस्तक व भ्रू भाग में किसी प्रकार का भी दोष व चंचलता दिखाई नहीं देती तथा और भी किसी अङ्ग, स्वभाव और चेष्टा में त्रुटि प्रतीत नहीं होती । सचमुच जिस पार्थिव (राजा) का ऐसा दूत न हो उसके कार्य सिद्ध नहीं हो सकते । जिसके यह दूत हैं उसके सब कार्य सिद्ध ही हैं ।❀

इसके पीछे लक्ष्मण ने सारा वृत्तान्त सुनाया और कहा कि हे हनुमान ! यद्यपि हमारा कुल और बल जगत् प्रसिद्ध है । परन्तु इस समय सीता के हरे जाने और दनु पुत्र कबन्ध के कहने पर हम आपकी और सुग्रीव की शरण में आये हैं । आप हमें शरण में अवश्य लें —

अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥४॥१७

हनुमान ने राम लक्ष्मण को सीता पाने का विश्वास दिलाते

❀ जो लोग हनुमान को वन्दर समझते व मानते हैं वे कृपया महर्षि वाल्मीकि जी के लिखे इन राम वचनों को ध्यान से पढ़ें और सोचें कि क्या कभी वन्दर भी वेद वेदांग पढ़ सकता है तथा राम जैसे विद्वानों के सामने अपने संस्कारों और शील सौन्दर्य का प्रभाव डाल सकता है ? - सम्पादक

हुए कहा, कि सुग्रीव भी आपकी भाँति भाई की क्रूरता के कारण राज्य-भ्रष्ट हुए तथा स्त्री से वियुक्त, पर्वत पर निवास करते हैं। आप चलकर उनसे मैत्री सम्पादन करें फिर अवश्य आपका और उनका कार्य सिद्ध हो जायगा।

: ४ :

जब हनुमान पुरोहित बने !

तब दोनों भाई हनुमान के साथ हो लिए। हर्ष विभोर हो महावीर ने आग्रह पूर्वक दोनों भाइयों को अपने वृषभ कन्धों पर उठा लिया और उछलते-कूदते वे उन्हें लेकर सुग्रीवके सैनिक शिविर में जा पहुँचे। दोनों भाई सुग्रीव से मिले। आवश्यक शिष्टाचार के पश्चात् परस्पर मैत्री धर्म मे दीक्षित होने का निश्चय हुआ।

इस सन्दर्भ में अब प्रश्न उपस्थित हुआ कि पुरोहित का पवित्र और सम्मानास्पद आसन कौन ग्रहण करे ? कुछ क्षणों के लिए सभी असमंजस से में रहे, पर शीघ्र ही श्रीराम ने मौन तोड़ते हुए प्रस्ताव किया—'महावीर हनुमान हमारें बीच उपस्थित हैं। इनके अगाध पांडित्य, सदाचरण और वेदानुशीलन के साथ ही उनको क्रान्तिकारी युवक संगठना के विषय में महर्षि अगस्त्य ने मुझे विस्तार से बताया था और अब उससे भी अधिक हम स्वयं देख रहे हैं। अतः प्रत्येक दृष्टिकोण से हनुमान जी इस पवित्र पद के अधिकारो हैं। महर्षि अगस्त्य की अनुपस्थिति में उनके योग्यतम शिष्य और सच्चे प्रतिनिधि महावीर ही इस दिव्य दायित्व का निर्वहन करने में समर्थ हैं।"

"पर भगवन् ! मैं तो आज से नहीं अयोध्या में जब प्रथम बार कुछ काल के लिए आपके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिला था तभी से आपकी मर्यादावत्ता एवं महान् व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धोपेत भक्ति भावना रखता रहा हूँ। और महाराज सुग्रीव तो हमारे राजा

हैं, हम तो उनके अनुचर मात्र हैं" महावीर ने बड़े ही विनीत स्वर में निवेदन किया।

"किन्तु पवन सुत ! पुरोहित तो वही होता है न, जो अपने यजमान के हित को आगे रखकर चले और व्यवहार करे। हम लोगों का आपसे अधिक हितैषी और कौन हो सकता है ? फिर जिस राष्ट्रोद्धार कार्य के लिए हम लोग यज्ञाग्नि को साक्षी कर मैत्री के अटूट बन्धन में बंधना चाहते हैं वह राष्ट्रोद्धार कार्य आपका तो जीवन-व्रत है। सच में तो आप ही इस राष्ट्र-यज्ञ के यजमान भी हैं। आपने तो उसके लिए आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य की व्रत दीक्षा ले घोर तपश्चरण किया है। प्रियवर ! आप आयु की दृष्टि से हमारे अनुजवत् अवश्य हैं पर विद्या, तपस्या और साधना के विचार से आप हमारे मान्य हैं। आप हमारे पुरोहित भी हैं, मित्र भी हैं, अनुज भी हैं और सेवक भी हैं। आप क्या नहीं हैं ? महान् वैदिक संस्कृति के साम्राज्य संस्थापन के देव-कार्य में जब जैसी आवश्यकता हो, आपको तो वही स्थिति ग्रहण करनी है, आपका जन्म ही इस दैवी कार्य के लिए है। अतः हे अंजनी कुमार ! आप संकोच को त्याग, हमारा पौरोहित्य स्वीकार कीजिये।"

हनुमान अब मौन थे।

श्री राम की अनुरोध भरी वाणी को वे टाल न सके। इधर सुग्रीव ने भी हनुमान का प्रशस्ति-गान करते हुए श्री राम के प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन किया। बड़े विनीत भाव से महावीर ने श्री राम-आज्ञा की पालना के रूप में पुरोहित के आसन को सुशोभित किया। 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चः चरतौ सह.......' मानो यह वेद व्यवस्था आज ऋष्यमूक पर मुखर हो उठी थी। क्रान्ति की आग उगलने वाला युवकों का हृदय सम्राट्, वह क्रान्तिकारी नेता, वेदज्ञ आचार्य के रूप में 'सामयाग' का सम्पादन करा रहा था। कैसा अनूठा दृश्य ! पर स्मरण रहे ब्राह्म धर्म और क्षात्र धर्म की यह सम-

न्वित सिद्धि महावीर हनुमान का ही भाग था। मां भारती के अमर सुत हनुमान आप वस्तुतः धन्य हैं।

यज्ञवेदि में सामान्य यज्ञ के पश्चात् 'ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' आदि पवित्र वेदमन्त्रों के उच्चारण एवं स्वाहाकार पूर्वक श्रीराम और सुग्रीव द्वारा हवियां दी गईं। व्रतपति परमात्मा को साक्षी कर दोनों मित्रों ने प्रगाढ़ मित्रता का व्रत धारण किया। दोनों गले मिले। वीर व्रती हनुमान तथा उपस्थित जन-समुदाय द्वारा पुष्प वर्षा और हर्षध्वनि की गई। इसी प्रसङ्ग में गोस्वामी तुलसीदास जी ने हनुमान जी को सम्बोधित करते हुए लिखा है—

"पावक साखी राखि कें कीनी प्रीति दृढाय।"

: ४ :

राम सुग्रीव मित्रता

अब दोनों मित्र—श्रीराम और सुग्रीव आपस में हाथ में हाथ मिलाकर एक आसन पर बैठकर विचार करने लगे और एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखते हुए कहने लगे, कि अब अपना सुख और दुःख एक ही है। इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग को महर्षि वाल्मीक ने यों वर्णित किया है—

काष्ठयोः स्वेनहस्तेन जनयामास पावकम्।
दीप्यमानं ततो वन्हि पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ॥५।१५
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ।
सुप्रीत मनसौ तावुभौ हरिराघवौ ॥५।१७
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः।
त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ ॥१८

इसी प्रकार कुछ देर तक प्रेमपूर्ण वार्त्तालाप द्वारा एक दूसरे को साहस देने के बाद महावीर हनुमान की प्रेरणा से सुग्रीव ने राम से कहा, राघव! आप अब सीता के वियोग का दुःख हृदय से निकाल

दें क्योंकि सीता चाहे पृथ्वी के किसी स्थान पर हो, मैं उसका गोत्र पता लगाऊँगा। और हाँ! मेरे पास कुछ भूषण और वस्त्र हैं। उन्हें देखिये। कदाचित वे सीता के ही हों क्योंकि एक दिन जब मैं अपने मन्त्रियों से विचार कर रहा था, तो विमान पर से हा राम! हा लक्ष्मण! का उच्चारण करती हुई एक स्त्री ने यह मेरी ओर फेंके थे थे। सुग्रीव ने महावीर द्वारा भूषण और वस्त्र मँगाकर राम के आगे रखे।

: ६ :

यतिवर लक्ष्मण का आदर्श

भूषणों को देखकर राम का हृदय शोक-व्यथा से उमड़ आया। मन को रोक कर वह लक्ष्मण से बोले, देखो लक्ष्मण! क्या यह तुम्हारी तुम्हारी भावज के ही हैं?

श्रीराम जी भूषण लक्ष्मण को दिखाते जाते थे परन्तु लक्ष्मण हाथ, कंठ तथा शिर के भूषणों को देख कर बोले, "भ्रात: ! मैं इनको नहीं पहिचान सकता पर जब पाँव के नूपुर देखे, तब वह झट बोल उठे कि हाँ आर्य! यह सीता देवी के ही भूषण हैं। सुग्रीव आदिकों ने अचम्भित होकर पूछा कि लक्ष्मण! जब तुम्हें सीता के पास रहते इतना लम्बा काल हो गया है, तो तुम उसके भूषणों को क्यों नहीं पहिचान सके? किन्तु केवल नूपुर कैसे पहचान लिए? इस पर लक्ष्मण बोले, मित्र! मैं कुण्डल केयूर और हारादि को इसलिए नहीं पहिचान सकता कि मैंने कभी सीता देवी को ऊँची दृष्टि से नहीं देखा। मैं केवल पाँवों को ही चरण-वन्दना के समय ❀ देखता था—

❀ पाठक! देखें, आप अपने महापुरुषों के भावों को जो राजकुमार होने पर वन में १२ वर्ष तक एकान्त में भाई की स्त्री तक को आँख उठाकर नहीं देखते। सचमुच जिस जाति में लक्ष्मण जैसे संयमी वीर हों, वह क्यों न जगत् पर विजय प्राप्त करे?

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वाभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात् ।६।२२।

राम सीता के दुःख का स्मरण करते हुए अधीर से हो गये और नाना विधि वाक्यों से शोक प्रकाशित करने लगे । राम को धैर्य देते हुए महावीर हनुमान प्रेरित सुग्रीव ने कहा, "राम ! शोक मत करो, मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि जानकी का शीघ्र ही पता लग जायगा । मुझे भी आपकी भाँति स्त्री-वियोग का दुःख है, पर मैं न शोक करता हूँ, न धैर्य छोड़ता हूँ । जब मुझ जैसा साधारण मनुष्य शोक नहीं करता तो आप महात्मा होकर शोक क्यों करते हो ?

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके ।
विमृशन् वैस्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ।कि० ७।९।
ये शोक मनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् ।
तेजश्च क्षीयन्ते तेषां न त्वं शोचितु महंसि सर्ग ७।१२।

"हे राम ! धृतिमान् पुरुष व्यसन में, भारी कष्ट में, धन के नाश में तथा जीवनान्त में भी विचार करते हैं, शोक नहीं करते । जो शोक करते हैं उनका सुख नष्ट हो जाता हैं, तेज हीन हो जाता है और बहुधा जीवन में भी सन्देह हो जाता है । हे राजेन्द्र ! आप शोक त्याग कर धैर्य का आश्रय लें ।" ❀

: ७ :

हनुमान द्वारा सुग्रीव का राज्याभिषेक

बाली वध और उसके अन्त्येष्टि संस्कार के पीछे राष्ट्र को बिना राजा

❀ पाठक विचारें कि क्या श्रीराम को इस प्रकार धर्मोपदेश करने वाले सुग्रीव बन्दर हैं ?

के जान, राजा के अभिषेक की तैयारी की गई। राजतिलक के योग्य औषधि, भूषण वस्त्र आदि तैयारकर लेनेके पश्चात् हनुमान श्रीरामके पास जाकर बोले, महाराज ! आप किष्किन्धा में चलकर अपने हाथ से अपने मित्र को अभिषेक दीजिए क्योंकि विना राजा के प्रजा का कल्याण नहीं हो सकता। राज्याभिषेक की सब सामग्री तैयार है।

यह सुनकर राम ने कहा, हनुमान ! मैं तुम्हारे स्नेह व आदर से प्रसन्न हूँ, पर मुझे १४ वर्ष पर्यन्त किसी नगर में प्रवेश नहीं करना है, इसलिये तुम्हीं राजविधि से सुग्रीव को तिलक दे दो। राज्य पर वास्तव में अधिकार तो अङ्गद का है, परन्तु वह अभी बालक है और इस समय राज्य भार नहीं उठा सकता, इसलिए आगे को युवराज का पद अङ्गद को दे दो। पश्चात् –

स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ।२६।६।
तस्य पांडुरमाजह्नुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ।२६ २३।
शुक्ले च बालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे ।
तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च ।२६।२४।
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च ।
शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेत चैवानुलेपनम् ।२६।२५।
सुगन्धानि च माल्यानि स्थलजान्यंबुजा नि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहू न् ।२६।२६।
अक्षतं जातरूपं च प्रियंगु मधु सर्पिषी ।
दधि चर्म च वैयाघ्रं पराध्यौ चाप्युपानहौ ।२६।२७।
समालंभदमादाय गोरोचनं मनः शिलाम् ।
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराकन्याश्चषोडश ।२६।२८।
ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि ।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ।२६।२९।

ततः कशपरिस्तीर्ण समिद्धं जातवेदसम् ।
मंत्र पूतेन हविषा हुत्वा मंत्रविदो जनाः ।२६।३०

राम की आज्ञा पाकर सुग्रीव को सर्वोषधि के शुद्ध जल
स्नान करा कर सारी प्रजा की सम्मति से हनुमान ने सुग्रीव को रा
सिंहासन पर और वीर अंगद को युवराज के आसन पर विठा दिया
राज्याभिषेक के समय महात्मा सुग्रीव पर रत्न जटित सोने का छत्र
सफेद बालों के नर्म और मन्द वायु देने वाले चांदी के दो पंखे, यश
कारी सुवर्ण के दण्ड शोभा दे रहे थे। सब प्रकार के रत्न, सब जीव
नीय औषधों के सत्व, सुन्दर वृक्षों वा लताओं की पत्तियें, सुगन्धित
और मनोहर कुसुम, शुक्ल वस्त्र, सफेद चन्दन और कपूर का लेपन,
सुन्दर गन्ध वाली पुष्प मालायें, जल और स्थल में पैदा होने वाले
पदार्थ, दिव्य चन्दन, बहुविधि सुगन्धियें, अक्षत, जातरूप प्रियगु सहित
घृत, दधि, व्याघ्रचर्म, उत्तम उपानह (जूता) गोरोचन, मन-शिला,
भक्ष्य भोज्य, रत्न, वस्त्र, फल, कन्द मूल, धन और धान्य उस समय
उपस्थित किये गये थे।

सबसे प्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें ऋत्विक्
अध्वर्यु, होता तथा ब्रह्मा के आसन पर बैठाया गया। फिर सुन्दर
समिधाओं से अग्निकुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित कर, वेद मन्त्रों से
पवित्र हवि और विधि से वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा हवन कराया गया तथा
राजा प्रजा के लिए शान्ति की प्रार्थना की गई।

अग्नि होत्र के पीछे सोने के सुन्दर सिंहासन पर महाराजा
सुग्रीव को पूर्वाभिमुख बैठाकर, सब मन्त्रि गणों ने राजा के महत्व को
पढ़कर, पूरी विधि से गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, हनुमान
और जाम्ववान् ने प्रसन्नचित होकर राजतिलक किया। तिलक
के पीछे महावीर हनुमान की व्यवस्था के अनुसार मन्त्रि-मण्डल तथा
प्रजा के प्रतिनिधियों ने राजा को प्रणाम किया तथा राजकीय आज्ञा

मानने एवं शासन में राजा की सब प्रकार की सहायता देने की प्रतिज्ञा की।*

: ८ :

हनुमान की चेतावनी और राजनीतिमत्ता

वाली का वध कर श्रीराम भाई लक्ष्मण सहित प्रवर्षण पर्वत पर निवास करके वर्षा ऋतु का समय व्यतीत करते हैं। उधर सुग्रीव राज्य, ऐश्वर्य और स्त्री आदि के मिल जाने से भोगों में फंसकर राम कार्य को प्रायः भूल ही जाते हैं। यह देखकर राजनीति-विशारद श्री हनुमान जी सुग्रीव को राम कार्य की स्मृति कराते हुए कहते हैं—"महाराज! आपने राज्य प्राप्त कर लिया, यश भी उपलब्ध किया, तथा कुल-कीर्ति व लक्ष्मी भी ले ली, पर अभी मित्र-संग्रह शेष है, सो वह भी जल्दी प्राप्त कर लेना चाहिए। क्योंकि जो समय पर मित्रों की प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है उसका राज्य, कीर्ति, लक्ष्मी और यश चारों ओर बढ़ता है।

इसलिए राजन्! अब आप सब कामों को छोड़ कर, अपनी कुल-प्रतिष्ठा बढ़ाने और राज्य दिलाने वाले राम का कार्य करें। एक तो वह आपके मित्र हैं, दूसरे आपके प्रथम उपकारी हैं क्योंकि पहिले उन्होंने इन्द्र सम बली व प्रतापी बाली को मार कर आपके प्राण, धन, स्त्री और पुत्र की ही रक्षा नहीं की, किन्तु आपको महाराजा बना दिया है। अतः अब उचित यही है कि आप अपने वीर और चतुर योधाओं को भेजकर सीता का पता लगायें।"

---

*सुग्रीव के राजतिलक समारोह के इस समस्त वृत्त को पढ़कर भी क्या कोई अपने इन महान् पूर्वजों को वन्दर कहने का दुस्साहस करेगा?

हनुमान के इस आवश्यक और हितकारी संदेश को सुन सुग्रीव ने सेनाध्यक्ष नील से कहा कि तुम चारों दिशाओं में सीता की खोज लाने के लिए योग्य दूत भेजो और जहाँ-जहाँ तुम्हारा जाना जरूरी हो वहाँ-वहाँ तुम जाओ।

इधर सुग्रीव तो नील को आदेश देकर फिर अपने काम में लग गया और उधर वर्षा के बीत जाने और आकाश के निर्मल तथा मार्गों के शुद्ध हो जाने के कारण स्नेह व पत्नी-पालन के धर्म के कारण राम सीता का स्मरण करने लगे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा "वीर! प्रतीत होता है कि सुग्रीव को हमारे और सीता के कष्ट का ध्यान नहीं है। उसे राज-भोग में पड़ जाने के कारण अपने प्रतिज्ञा किए वचनों का स्मरण नहीं रहा और किष्किन्धा को प्राप्त करके उसे यह भी स्मरण नहीं रहा, कि शुभ व अशुभ वचनों के पालने वाला और द्वार पर बैठे हुए अर्थियों के अर्थ पूरा करने वाला पुरुष ही वीर तथा श्रेष्ठ है।

"लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा में जाकर उस प्रमादी से कहो कि यदि तुम सत्य से फिरोगे और सीता पाने में सहायता न करोगे तो हम तुम्हें भी वन्धुओं सहित उसी वाण से हनन कर देंगे, और उसी मार्ग का यात्री बनायेंगे, जिसका तुम्हारा भाई बाली बना, क्योंकि हमारे लिए वह मार्ग संकुचित (तङ्ग) नहीं है।"

लक्ष्मण का किष्किन्धा गमन

राम के सन्देश को लेकर किंचित् क्रोध युक्त होकर लक्ष्मण किष्किन्धा में सुग्रीव को समझानेके लिए चले। जब लक्ष्मण किष्किन्धा में पहुँचे तो वानरों ने उनका स्थान-स्थान पर स्वागत किया। कुछ दूर और आगे चले तो उन्हें युवराज अङ्गद मिले, जिन्होंने बड़ी नम्रता ले उन्हें प्रणाम किया और सत्कार पूर्वक नगर दिखाते हुए उन्हें राजभवन की ओर ले चले तथा राजसभा एवं भवन में लक्ष्मण के आने की सूचना दी।

लक्ष्मण के सकोप आने का समाचार पाकर सुग्रीव बड़े भयभीत हुए। उन्होंने भय दूर करने के लिए मुख्य मन्त्री और योद्धा हनुमान को बुला भेजा।

हनुमान के आने पर, सुग्रीव आसन से उठकर, गुप्त विचार स्थान में जाकर बोले, "मन्त्रिन्! मैं राम वा लक्ष्मण से नहीं डर रहा, किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा करके, उसका पालन नहीं किया इससे डरता हूँ। इस कर्म से महात्मा राम जैसे मित्र का मुझ पर कोप हो गया है। यद्यपि यह सत्य है, कि मित्र बनाना सुगम है पर मित्रता को निबाहना कठिन है—

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम्। कि० ३२।७।

तुम बताओ कि अब मैं इस अपराध का क्या प्रायश्चित करूँ? हनुमान ने कहा—राजन्! श्रीराम का कोप सच्चा है, इसीलिए उन्होंने भाई लक्ष्मण को भेजा है। तुम प्रमाद में पड़कर अपने कर्त्तव्य को भूल गये हो। देखो, कब से आकाश निर्मल और मार्ग शुद्ध हो गये हैं, क्या तुमने कोई उपाय सीता के ढूँढ़ने का किया? इसीलिए तो लक्ष्मण कोप युक्त हो कर यहां आये हैं। अब हाथ जोड़ कर लक्ष्मण से क्षमा माँगने के सिवाय इस अपराध का कोई अन्य उपाय नहीं हो सकता।

राजन्! शास्त्र में लिखा है कि मन्त्री पद पर नियुक्त मन्त्रियों को राजा के हितकर वाक्य अवश्य कह देना चाहिए, इसीलिए मैंने निर्भय होकर यह निश्चित वचन कहा है—

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवोहितम्।
अत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्येव वृतं वचः। कि० ३२।१८॥

अन्ततः हनुमानजी की सम्मति से नीति-निपुण देवी तारा को आगे करके सुग्रीव यतिवर लक्ष्मण से मिले। महारानी तारा को क्षमा याचना करते देख आर्य लक्ष्मण ने उठकर उन्हें अभिवादन किया। उनका क्रोध पानी-२ हो गया। इसी प्रकार श्रीराम भी हनुमानजी के नीति कौशल से सर्वथा शान्त और मृदु हो गये। + +

: ६ :

सुग्रीव की महावीर के प्रति निष्ठा

इसके बाद जब श्री सीता जी की खोज के लिए सब दिशा में वानरों को भेजने की बातचीत हो रही थी, उस समय का व श्री वाल्मीकीय रामायण में देखने से मालूम होता है कि सुग्रीव श्री हनुमानजी पर कितना भरोसा और विश्वास था तथा भग श्री राम को भी उनकी कार्य कुशलता पर कितना विश्वास था। श्रीराम के सामने ही सुग्रीव हनुमान से कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिभंग ते पश्यामि हरिपुंगव ।।
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः ।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ।।
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे ।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ।।
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्वमेवानुचिन्तय ।।
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डितः ।

(किष्किन्धा० ४४। ३-

"कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारी गति का अवरोध न पृथ्वी में, न अन्त में, न आकाश में और न देवलोक में अथवा जल में ही देखा है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य इनके सहित उन-उनके स लोकों का समुद्र और पर्वतों सहित तुम्हें भली-भाँति ज्ञान है। कपे ! तुम्हारी गति, वेग, तेज और फुर्ती—तुम्हारे महान् बल

पिता पवन के समान हैं। वीर ! इस भूमण्डल पर कोई भी प्राणी तेज में तुम्हारी समानता करने वाला न कभी हुआ और न है। अतः जिस प्रकार सीता मिल सके, वह उपाय तुम्हीं सोचकर बताओ, हनुमान ! तुम नीति शास्त्र के पण्डित हो, बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकाल का अनुसरण और नीतिपूर्ण बर्ताव—ये सब एक साथ तुम में पाये जाते हैं।"

: ६० :

श्रीराम का हनुमान जी पर विश्वास

इस प्रकार सुग्रीव की बातें सुन कर भगवान् श्री राम हनुमान जी की ओर देखकर अपना कार्य सिद्ध हुआ ही समझने लगे। उन्होंने मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने नाम के अक्षरों से युक्त एक अँगूठी हनुमान जी के हाथ में देकर कहा—

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिन्हेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥

(किष्किन्धा० ४४। १३-१४)

'कपिश्रेष्ठ ! इस चिन्ह के द्वारा जनक नन्दिनी सीता को यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पास से ही गये हो। तब वह निर्भय होकर तुम्हारी ओर देख सकेगी। वीरवर ! तुम्हारा उद्योग, धैर्य और पराक्रम तथा सुग्रीव का संदेश इस बात की सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा इस कार्य की सिद्धि अवश्य होगी।'

अध्यात्म रामायण में भी प्रायः इसी प्रकार श्रीराम ने हनुमान जी के गुणों की बड़ाई की है। वहाँ निशानी के रूप में अपनी मुद्रिका देकर भगवान् श्रीराम हनुमान जी से कहते हैं—

अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम ।
जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव ॥

[४ । ६ । २९]

'कपिश्रेष्ठ ! इस कार्य में केवल तुम्हीं समर्थ हो । मैं तुम्हारा समस्त पराक्रम भलीभाँति जानता हूँ । अच्छा जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणकारक हो ।'

: ११ :

हनुमान जी को समुद्र लाँघने की प्रेरणा

इसके बाद जब जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरों के साथ हनुमान जी सीताजी की खोज करते-करते समुद्र के किनारे पहुँचते हैं और श्री सीताजी का अनुसन्धान न मिलने के कारण शोकातुर होकर सब वहीं अनशन-व्रत लेकर बैठ जाते हैं, तब गृध्रराज सम्पाति से बातचीत होने पर उन्हें यह पता लगता है कि सौ योजन समुद्र के पार लंकापुरी में राक्षस राज रावण रहता है, वहां अपनी अशोक वाटिका में उसने सीता जी को छिपा रखा है । तब सब वानर एक जगह बैठकर परस्पर समुद्र लांघने का विचार करने लगे । अङ्गद के पूछने पर सभी ने अपनी-अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया, परन्तु श्री हनुमान जी चुप साधे बैठे ही रहे । कैसी निरभिमानता है ! यह प्रसङ्ग श्री वाल्मीकिय रामायण में बड़ा ही रोचक और विस्तृत है। वहाँ जाम्बवान् ने श्री हनुमान जी की बुद्धि, बल, तेज, पराक्रम, विद्या और वीरता का बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे कहते हैं—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर ।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि ॥
...   ...

रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥

... ...

गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वं पक्षिणाम् ॥

\+ + +

पक्षयोर्यद्‌बलं तस्य भुजवीर्यं बलं तव ।
विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते ।
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्वं च हरिपुंगव ।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे

(किष्किन्धा० ६६।२—७)

'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ तथा वानर-जगत् के अद्वितीय वीर हनुमान ! तुम कैसे एकान्त में आकर चुप साधे बैठे हो ? कुछ बोलते क्यों नहीं ? तुम तो तेज और बल में श्री राम और लक्ष्मण के समान हो। गमनशक्ति में सम्पूर्ण पक्षियों में सर्वश्रेष्ठ महाबली गरुड़ के समान विख्यात हो। उनकी पांखों में जो बल-विक्रम तेज तथा पराक्रम है, वही तुम्हारी इन भुजाओं में भी है। वानर-श्रेष्ठ ! तुम्हारे अन्दर समस्त प्राणियों से बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य है, फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते ?

इसके बाद ज़ाम्बवान् उनके जन्म की कथा सुनाते हैं तथा बाल्यावस्था के पराक्रम और महर्षि अगस्त्य के आश्रम में राष्ट्रोद्धार कार्य के लिए अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत-दीक्षा की स्मृति दिलाते हुए अन्त में कहते हैं—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम् ।
परा हि सर्वभूतानां हनूमन् या गतिस्तव ॥

(किष्किन्धा० ६६।३६)

"वानरश्रेष्ठ हनुमान ! उठो और इस महासागर को लांघ जाओ। जो तुम्हारी गति है वह सभी प्राणियों से बढ़कर है। सब वानर चिन्ता में पड़े हैं और तुम इनकी उपेक्षा करते हो, यह क्या बात है ? तुम्हारा वेग महान् है।" इतना सुनते ही श्री हनुमान जी तुरन्त ही समुद्र लांघने के लिए योगबल से प्राणायाम द्वारा अपना शरीर बढ़ाने लगे।

रामचरित मानस में भी इसी आशय का वर्णन है। वहाँ सब को धैर्य देने के बाद जाम्बवान् हनुमान जी से कहते हैं—

कहइ रीछपति सुन हनुमाना ॐ का चुप साधि रहेहु बलवाना।
पवन तनय बल पवन समाना ॐ बुधि विवेक बिग्यान निधाना।
कवन सो काज कठिन जगमाहीं ॐ जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।

: १२ :

महावीर का आत्म विश्वास तथा विराट् रूप

अध्यात्म रामायण में भी प्रायः इसी तरह का वर्णन है। वहाँ श्री हनुमान जी आत्मविश्वास की वाणी में कहते हैं—

लंघयित्वा जलनिधिं कृत्वा लंका च भस्मसात्।
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्॥
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना।
लंका सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्॥
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्।

(४।९ २२-२४)

'वानरो ! मैं समुद्र को लांघकर लङ्का को भस्म कर डालूँगा और रावण को कुल सहित मारकर श्रीजनकनन्दिनी को ले आऊँगा अथवा कहो तो रावण के गले में रस्सी डालकर तथा लंका को त्रिकूट

पर्वत सहित बांये हाथ पर उठाकर भगवान राम के आगे ला रक्खूं ? या शुभलक्षणा श्री जानकीजी को ही देखकर चला आऊं ?'

कितना आत्मबल है ! इस पर जाम्बवान् ने कहा—"वीर ! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा श्रीजानकी को जीती-जागती देखकर ही चले आओ।"

अपने जीवन व्रत की पूर्ति की दिशा में आज महावीर के समक्ष चिर प्रतीक्षित स्वर्ण सुयोग उपस्थित हुआ था। उनके नेत्रों में महर्षि अगस्त्य की व्रत-दीक्षा का दृश्य झूल रहा था। उनके विराट पौरुष के प्रदर्शन की घड़ी उपस्थित थी। समुद्र लांघने के लिये श्रीहनुमानजी ने जो विराट रूप धारण किया था, उसका वर्णन वाल्मीकीय रामायण में विस्तार पूर्वक है। यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है—

ववृधे राम कार्यार्थं समुद्र इव पर्वसु।
निष्प्रमाणशरीरः संल्लिलंघयिषुरर्णवम्।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम्॥
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत्॥
तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चाये नगोत्तमः।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम्॥

(सुन्दर० १। १०, ११, १२, ४६)

'जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन समुद्र बढ़ता है, उसी प्रकार महात्मा श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए हनुमान बढ़ने लगे। * समुद्र लाँघने की इच्छा से उन्होंने अपने शरीर को प्राणायाम द्वारा बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजाओं एवं चरणों से उस पर्वत को दबाया तो वह हनुमानजी के द्वारा ताडित हुआ पर्वत तुरन्त कांप उठा और मुहूर्त भर कांपता रहा। उस पर उगे वृक्षों के समस्त फूल झड़ गये। जब उन्होंने उछाल मारी, तब पर्वत पर उगे हुए साल तथा दूसरे वृक्ष

---

* यहाँ दृढ़ संकल्प शक्ति का अलंकारिक वर्णन है।

इधर-उधर गिर गये। उनकी जाँघों के वेग से टूटे हुए वृक्ष इस प्रकार उनके पीछे चले जैसे राजा के पीछे सेना चलती है।'

इस प्रकार जाम्बवान् आदि की आज्ञा से तथा राम के कार्य के लिए ज्योंही हनुमान ने वीर वेश धारण कर यात्रा आरम्भ की, तो प्रतीत होता था, मानो वन वृक्ष और पर्वत हनुमान की वीरता से काँप रहे हैं। हनुमान की यात्रा को देखने के लिए जो अनेकों वानर समुद्र तट पर आए हुए थे उनके पूछने पर हनुमान ने कहा—

> यथा राघव निर्मुक्तः शरःश्वसन विक्रमः। सु० काँ० १।३९
> गच्छेत्तद्वद् गमिष्यामि लंकां रावण पालिताम्।
> न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लंकायां जनकात्मजाम्।सु० १।४०
> बद्ध्वा राक्षसराजान मानयिष्यामि रावणम्।
> सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सहसीतया। सु० १।४१

'मित्रवर! जिस भाँति राम के हाथ से छूटा हुआ वायु समान वेग वाला बाण अपने कार्य को सिद्ध करता है, इसी भाँति मैं रावण-पालित लंका में जाऊँगा और यदि वहाँ लंका में सीता को न पाया तो जहाँ पता लगेगा, वहीं जाकर उसी उत्साह एवं पुरुषार्थ से सीता की सुधि लाऊँगा अथवा राक्षसों के राजा रावण को पकड़ कर यहाँ लाऊँगा। मैं सर्वथा सीता के साथ कृतकार्य होकर यहाँ आऊँगा।

यह कह कर महाबली हनुमान समुद्र पार होने के लिए समुद्र में प्रविष्ट हो गये। हनुमान के प्रविष्ट होते ही समुद्र में ऐसा शब्द हुआ जैसा कि मेघ गर्जन से होता है।

: १३ :

समुद्र का पार जाना

हनुमान की यात्रा के समय उसकी नौका पार्थिव होने पर भी वायु की भाँति प्रतीत होती थी। हनुमान समुद्र के जिस देश में जाते अर्थात् वह जिस-२ समुद्री भाग को तैरते वह-२ इनकी शीघ्रगति से

उन्माद रोगियों की तरह हो जाता। सारांश यह है, कि जैसे उन्माद रोगी के मुख से झाग आदि आने लगते हैं, वैसी ही समुद्र की दशा हो जाती। न केवल यही, किन्तु बड़े शब्द वाले समुद्र को एक ओर मेघ-वायु और दूसरी तरफ हनुमान की यात्रा से पैदा हुआ वायु कम्पायमान कर देता था।

वलवान कपि-कुञ्जर ऐसे वेग से जाता था, मानो उसके सामने सागर द्रोणी के समान हैं। अर्थात् हनुमान के यात्रा-साधन (दिव्य-नौका) के सामने समुद्र अपनी गम्भीरता को त्याग देता था।

हनुमान की इस वीरता को देखकर, जहाँ इस ओर के देवता, गन्धर्व, पतग, ऋषि, मुनि तथा मनुष्य उसे प्रशंसा से देखने लगे, वहाँ दूसरी तरफ समुद्र में रहने वाले तथा यात्रा करने वाले भी उसे आदर की दृष्टि से देखते थे।

सागर का सद्भाव—हनुमान को वेग से आते देख कर सूर्य वंश का मान करने वाला सागर❀ नामक पुरुष सोचने लगा कि—

तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति।
इक्ष्वाकु कुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः। सु० १।८५
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः।
करिष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षयताम्। सु० १।८६
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखोऽसौऽतितरिष्यति। सु० १।८८

—मैंने तो सूर्य वंशियों से कई प्रकार के लाभ पाये हैं। अब सूर्य वंशी युवराज पर विपद् पड़ी है और उसी की सहायता के लिए यह वानर वंशी नरवीर आ रहा है। इस समय यदि मैंने इसकी सहायता

❀कई लोग सागर के अर्थ जलीय समुद्र से लेते हैं पर वह अयुक्त तथा असम्भव है। कारण, एक तो जड़ में ऐसे विचार असम्भव हैं, फिर आगे चल कर पुल बाँधने का प्रकरण आता है। यदि जड़ समुद्र में राम की भक्ति मानी जाय तो पार जाने के लिए पुल बाँधना आदि प्रयत्न मिथ्या सिद्ध होते हैं। हाँ, कवि का यह काव्यमय अलंकारिक वर्णन है।

न की तो मेरी सब ओर से निन्दा होगी। अतः अब मैं ऐसा यत्न करूं जिससे कि यह सुख पूर्वक विश्राम कर, अगले मार्ग को सरलता पूर्वक तर ले।

मैनाक पर विश्राम—यह विचार कर सागर ने हनुमान् से विश्राम के लिए कहा। हनुमान ने भी मार्ग लम्बा समझ महात्मा सागर के कथनानुसार 'मैनाक पर्वत" पर विश्राम किया और वहाँ खान-पान की आवश्यकता को पूर्ण किया।

यहाँ से चलकर हनुमान कई प्रकार के कष्टों को सहते हुए आगे 'सुरसः' ❀ से कुछ काल तक युद्ध कर, पूर्ण स्वस्थता से समुद्र के पार हो गये।

: १४ :

लंका प्रवेश

भयानक महासागर को तर कर, हनुमान बिना किसी प्रकार के श्रम के लंका को देखने लगे।

फिर सोचने लगे अहो! इतनी सुरक्षित नगरी में मैं किस प्रकार प्रवेश कर सकता हूँ और बिना अन्दर प्रवेश किये सीता का सन्देश कैसे ला सकता हूँ? अतः कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि जिससे बिना राक्षसेन्द्र रावण को सूचना मिले, मैं सीता से मिल सकूं

❀ सुरसा वस्तुतः कोई भौतिक देहधारी स्त्री न थी जिससे महावीर ने युद्ध किया। यह काव्यात्मक अलंकारिक वर्णन है। स+रसः का अर्थ है बहुत रसीला। अर्थात् सांसारिक भोग, भौतिक आकर्षण। ज्यों-ज्यों युवावीर हनुमान स्वर्णमयी लंका (उस काल के भौतिक आकर्षणों व भोगप्रधान सभ्यता के केन्द्र) की ओर बढ़ने लगे मानो 'सुरसा' भौतिक आकर्षणों ने उन पर प्रहार किया। ज्यों-ज्यों लंका समीप आ रही थी वे आकर्षक बढ़ते जा रहे थे, सुरसा का मुँह फैल रहा था पर महावीर की संकल्प-शक्ति दूनी बढ़ रही थी। और अन्त में सच्चे 'महावीर' ने अपने योग बल (जो सूक्ष्मता का प्रतीक है) से उस पर विजय प्राप्त की। यही सुरसा-संग्राम का रहस्य है।

अन्यथा यदि दुष्ट को कहीं पता लग गया, तो वानरों का मुझ पर भरोसा, मेरा समुद्र का पार करना तथा राम का शुभचिन्तन सब व्यर्थ हो जायगा।

परन्तु ऐसा क्यों कर हो सकता है जब कि राक्षसेन्द्र की आज्ञा विना यहाँ वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती, और न उसके भीमकाय कर्मचारी गुप्तचर राक्षसों के ज्ञान से परे कोई चिरकाल तक ठहर ही सकता है। इसी प्रकार के संकल्प-विकल्प करते हुए हनुमान को वहीं शाम होगई, तो हनुमान ने रात्रि के समय मदान्ध राक्षसों के मार्गों को त्याग कर किसी छुपे हुए मार्ग से उलांघ कर लंकापुरी में प्रवेश किया—

प्रदोष काले हनुमाँस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तसहापथाम् ।सु० २।४८

लंका से संग्राम—रात्रि के समय जब हनुमान लंकापुरी में प्रविष्ट हुए, तब वह उसकी दृढ़ता, ऐश्वर्य और विलक्षण रचना को देखकर पहिले तो प्रसन्न हुए, पर जब उन्हें यह विचार हुआ कि इसकी दृढ़ता और सुरक्षा हमारे कार्य में भारी विघ्नकारक है तो किंचित् दुःखी भी हुए। क्योंकि वह जानते थे, कि यहाँ राम और उसके अनुयायियों का आना कठिन है। हनुमान अभी उधेड़-बुन में ही थे कि इतने में उन्हें वीर वेश में शस्त्र-अस्त्रों से सज्जित एक वीराङ्गना स्त्री मिली। इस स्त्री का नाम लंका था तथा इसके बुद्धि, बल और वीरोचित साहस को देखकर रावण ने इसे बहुविधि सेना व धनादि लेकर लंका की रक्षा के लिए नियुक्त कर रखा था।

इसके कुछ काल के प्रबन्ध से ही सर्व साधारण को निश्चय हो गया था, कि जब तक लंकापुरी की रक्षा 'लंका' कर रही है, तब तक लंकापुरी की पराजय कठिन है।

हनुमान को देखते हीं लंका ने कई प्रकार के कटु शब्द कहे और उसे ताड़ना आरम्भ किया—लंका के इस दुःसाहस को देख कर पहले तो श्री हनुमान जी ने स्त्री समझकर हाथ उठाने में संकोच

किया, परन्तु जब उसकी धृष्टता बढ़ती देखी, तब इन्होंने बिना शस्त्र उठाये ही उसको तिरस्कृत कर दिया। जब वह भूमि पर गिर कर आर्त्त स्वर करने लगी, तब तत्क्षण वीर हनुमान ने उस पर कृपा की तथा उस पर और किसी प्रकार का प्रहार करना त्याग दिया—

ततस्तु हनुमान्वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातताम् ।
कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ।।सु० ३।४२

हनुमान की कृपा से कृतार्थ हुई वह बोली, हे महाबाहो! प्रसन्न होकर मेरी रक्षा कीजिए। हे सौम्य ! समय २ पर सब बली होते हैं। अब निश्चय जानिये कि आपकी मनोकामना पूरी होगी क्योंकि मेरे जीतने से आपने मुझ एक स्त्री को ही नहीं जीता किन्तु सारी लंका को ही जीत लिया है। सच पूछिये तो सीता के निमित्त से अब दुरात्मा रावण का और अन्य सब राक्षसों के नाश का समय आ गया है। अतः हे महावीर ! तू स्वेच्छापूर्वक लंका के स्थान २ में विचर और जो तेरा कार्य है उसको निश्चिन्त होकर कर।

लंका भ्रमण एवं बल निरीक्षण

'लंका' का अभिमान दूर कर हनुमान लंकापुरी के अन्दर के भाग में चले गये, जहाँ राजा व राज कर्मचारियों के निज के भवन थे। फिरते-२ इन्होंने बहुत से स्वाध्याय में लगे राक्षसों को देखा तथा अनेकों को मन्त्र पढ़ते व रावण की स्तुति के गीत गाते सुना तथा कई स्थानों में अग्निकुण्ड और अग्निहोत्र के साधनों को देखा। आगे चलकर लंकापति रावण का भवन भी देखा। इसके चारों ओर शस्त्र अस्त्रों के धारण करने वाले, नीति-निपुण, कृतज्ञ अनेक वीर योद्धा खड़े हुए थे और वह मन्दिर पर्वत के शिखर पर अपनी कान्ति से आकाशस्थ नक्षत्रों की भाँति चमकता था। उसके इर्द-गिर्द अनेकों हाथी घोड़े रथ और विमान खड़े थे।

इसी प्रकार भ्रमण करते हुए हनुमान ने रावण और उसके प्रधान पुरुषों का बल देखने के लिए १. महोदर, २. विरूपाक्ष, ३.

विद्युज्जिह्व, ४. विद्युन्माली. ५. वहुदंष्ट्र, ६. शुक. ७. सारण, ८. इन्द्रजित, ९. जम्मुमालि, १०. सुमालि, ११. रश्मिकेतु, १२. सूयशत्रु, १३. वज्रकाय १४ धूम्राक्ष. १५ संपति, १६. विद्युद्रूपभीम, १७. घन १८. विघन, १९. शुकनाम, २०. चक्र, २१. शठ, २३. कपट २३. ह्रस्वकर्ण २४. दंष्ट्र, २५. लोमश, २६. मत्त, २७. ध्वजग्रीव सादिन, २८. विद्युज्जिह्व, २९. द्विजिह्व, ३०. हतिमुख, ३१. कराल, ३२. विशाल ३३. शोणिताक्ष आदि के भवनों को भी देखा, जिससे उन्होंने लंका के वल का निरीक्षण कर लिया। इसी भांति हनुमान ने—

> शिविका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः।
> लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ।सु० ६।२६
> क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च।
> कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ।सु० ६।३७
> ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने।
> समंदर समप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम् ।सु० ६।६८

रावण के चित्रशाला गृह, लता गृह, नाना विधि शिवका, क्रीड़ा भवन, दारू पर्वत, कामगृह और दिवागृह को भी देखा, जिससे लका के विज्ञानी व शिल्पी लोगों के वुद्धिवल का पता लग गया।❀

इन सवके देखने से हनुमान को रावण की वहुत सी रीति-नीति का पता लग लया, जिसका फल आगामी युद्ध में वहुत ही हितकर हुआ।

रावण भवन में सीता का भ्रम

सब स्थानों को देखकर, एक दिन पुनः हनुमान ने रावण के पुष्पक विमानादि को चढ़ कर देखा तथा स्त्री-मण्डल को देखते-२ उन्होंने एक गौर वर्ण, सुवर्ण भूषणों से भूषित, अन्तःपर की ईश्वरीय और सवर्था मनोहर अङ्गों वाली स्त्री को आनन्द में सोये हुये देखा

❀स्पष्ट है कि राक्षस भी मनुष्य ही थे और कि वैज्ञानिक प्रगति एवं भौतिक विकास में लंका राज्य पराकाष्ठा को प्राप्त था।

जिसे देख विचार किया, कि यह रूप यौवन सम्पन्न स्त्री सीता ही होगी—

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः ।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवन सम्पदा ।। सु० १०।५३

फिर उन्होंने सोचा कि राम से वियुक्त सीता इस प्रकार निश्चिन्त होकर सो नहीं सकती और न वह इस प्रकार भोग ही भोग सकती है। वह अलंकार धारण नहीं कर सकती और दूसरे पुरुष को तो क्या वह देवराज इन्द्र को भी सेवन नहीं कर सकतीं, क्योंकि राम के समान गुणवान् तथा निर्दोष पुरुष अन्य कोई नहीं हो सकता। इसलिए यह कोई अन्य स्त्री है। मुझे सीता का समाचार और स्थान से लेना चाहिए। यह विचार कर हनुमान पान भूमि की ओर चले गये—

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् । सु० ११।२
नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
नहि राम समः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि । सु० ११।३
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार स ।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः । सु० ११।४

: ६५ :

महावीर की धर्म-भीरुता : मनः शुद्धता

पान भूमि में सीता को देखते हुए हनुमान ने एक दिन बहुत सी रूप, यौवन तथा धन मद से मदान्ध रमणियों को रावण से रमण करते देखा. किन्तु जानकी को न देखा। तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और वह सोचने लगे कि—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति । सु० ११।३८

नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः । सु० ११।३९

दुःख की बात है कि मुझे सीता देवी का तो पता नहीं चला किन्तु अन्य कई प्रकार के धर्म लोप करने वाले, शास्त्र-निषिद्ध कर्म सामने दिखाई पड़ते हैं, जो एक धर्मात्मा धर्म-भीरु पुरुष को भी धर्म से पतित कर देते हैं। यद्यपि मेरी दृष्टि परस्त्री-विषय में दूषित नहीं, तथापि आज मैंने पर स्त्रियों को ऐसी दशा में अवश्य देखा है, जिसका देखना शास्त्र में निषिद्ध* है।

इस विचार के साथ ही हनुमान के हृदय में उस राजाज्ञा रूपी धर्म के नाश होने का भय उत्पन्न हुआ जिसके लिए वह समुद्र लांघ कर इतनी दूर आये थे। तब उन्होंने दूत-धर्म और मनुष्य-धर्म की तुलना करते हुए विचारा कि—

कामं पृष्ठाः मया सर्वा वश्वस्ता रावणस्त्रिय ।
न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते । सु० ११।४१
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् । सु० ११।४२
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियोहि स्त्रिषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे । सु० ११।४३
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परि मार्गते ।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् । सु० ११।४४
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी । सु० ११।४५

यद्यपि मैंने सब दिशाओं में स्त्रियों को देखा है, परन्तु मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही सब इन्द्रियों को शुभ-अशुभ कर्मों में प्रवृत्त कराने वाला है और वही मेरा मन व्यवस्था में है। फिर सीता स्त्री-मण्डल के अतिरिक्त दूसरी जगह

* नेक्षेत नग्नां परस्त्रियम् । इति स्मृतिः ।

मिलेगी ही नहीं क्योंकि स्त्रियाँ सदा स्त्रियों में ही देखी जाती। जिस जति का जो पदार्थ होता है वह उसी जाति में पाया जाता। स्त्री खो जाने पर हरिणों की पंक्तियां नहीं ढूंढी जातीं। इसलिए मन से रावण के अन्तःपुर में ही तब तक सीता को ढूंढना चाहि जब तक वह पा नहीं जातीं।

: १६ :

शास्त्रीय वीरभाव

रावण के अन्त पुर को देखकर भी जब हनुमान को सीता पता न लगा, तो उन्होंने विचार किया कि सीता का मिलना तो कठिन है, इसलिए किष्किन्धा को लौटना चाहिए। यह विचार अ उठने भी न पाया था उनको अन्तरात्मा ने उन्हें धिक्कारा, हनुमान ! तुमको वीर कहलाते हुए क्या यह कायरता और पुरुष रहित विचार शोभा देते हैं ? क्या तू निष्फल लौटकर अङ्गद, जाम वान् आदि बन्धुओं को मुँह दिखा सकेगा ? क्या तू योद्धा और व कहलाने के योग्य रहेगा ? नहीं ! नहीं !! इस विचार और निरा को छोड़कर उत्साह पूर्वक सीता की खोज कर ! निःसन्देह कृतकार्य होगा, क्योंकि अनिर्वेद अर्थात् पुरुषार्थ सब सिद्धियों मूल है—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः । सु० १२।१०
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ।सु० १२।१
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान् । सु०१२

तब महावीर हनुमान ने निश्चय कर लिया कि अब मैं उ

पूर्वक यत्न करता हुआ न केवल एक दो स्थानों को देखूंगा, किन्तु रावण-शासित सब देशों को ढूंढूंगा।

इस निश्चय के पीछे हनुमान ने कई दिन तक अनेकों देशों तथा अनेक जाति की स्त्रियों को कहीं विमान* पर चढ़ कर, कहीं अन्दर जाकर, कहीं भवनों के ऊपर चढ़ कर, कहीं किसी ओट में बैठकर देखा। जब फिर भी सीता का समाचार न मिला, तब उनको चिन्ता हुई कि सम्पाती के अनुमानानुसार सीता वहाँ नहीं होगी। या तो रामबाणों के भय से शीघ्र दौड़ते हुए रावण के विमान से सीता मार्ग में गिर पड़ी या उस सुकुमारी आर्य देवी का हृदय राम के वियोग में सागर के डरावने रूप को देखकर भयाक्रान्त हो गया और वह मर गई या इस उग्र बलधारी रावण के भुजाओं की पीड़ा को न सह कर उसने अपना जीवन त्याग दिया, अथवा इस तुच्छ बुद्धि ने उसे बुद्धि-हीन देखकर अपने शील की रक्षा के प्रतिकूल समय में भक्षण कर लिया अथवा दुष्ट रावण की आज्ञा से इन राक्षसनियों ने खा डाली होगी अथवा रावण के किसी अति गुप्त स्थान में पिंजरे में मैना की भांति वह कैद होगी अन्यथा वह राम-पत्नी जानकी रावण के वश में किस प्रकार आ सकती है ? दुःख की बात है कि बिना निश्चित प्रमाण के एक पत्नीव्रती राम को मैं कैसे बता सकूंगा कि वह नष्ट वा प्रनष्ट है या मर गई है ? इनमें से जो कुछ भी मैं कहूँगा, वह सदोष होगा। यदि सीता को बिना देखे ही मैं किष्किन्धा चला गया तो मेरा यह पुरुषार्थ किस काम आयेगा और समुद्र पार करने का क्या फल होगा तथा मुझे सुग्रीव तथा राम-लक्ष्मण क्या कहेंगे ?

यदि मैं जाकर कहूँ कि 'मैंने सीता नहीं देखी" तो इस कटु

---

* विमान पर चढ़ने उतरने और सब स्थानों में निःसंकोच जाने आने से प्रतीत होता है कि हनुमान ने लंका में विशेष परिचय वा मान प्राप्त कर लिया था। देखो वा० रामायण सु० काण्ड सर्ग ६। १६ वाँ सर्ग १२ श्लोक २५।

—सम्पादक

और इन्द्रिय सन्तापक वाक्य को सुनकर राम अपने प्राणों को त्या देंगे और राम की मृत्यु को सुनकर उनके स्नेही भाई लक्ष्मण भी जी न रहेंगे। राम-लक्ष्मण की मौत सुनकर और भरत के मरने को देख कर, शत्रुघ्न प्राण छोड़ देंगे। इन सब पुत्रों के परलोक को जानकर इनकी मातायें (कौशल्या सुमित्रा तथा कैकेयी) इस लोक में न रहेंगी। राम की इस दशा को देखकर कृतज्ञ तथा सत्य-प्रतिज्ञ सुग्रीव भी मर जायेंगे और सुग्रीव की मौत को देखकर उसकी पतिव्रता स्त्री 'रूमा' और अङ्गद की माता 'तारा' भी प्राण त्याग देंगी। इतने घोर संकट के हो जाने पर मेरे सहस्रों जाति बन्धु भी विष खाकर, समुद्र में कूदकर अथवा आग में जल कर मर जायेंगे। इसलिए मैं किष्किन्धा में जाकर इतने महा विनाश और रोदन का कारण कदापि न बनूँगा। हाँ, यदि सीता न मिली तो समुद्र के किनारे चिता बनाकर प्रचण्ड अग्नि में प्रवेश करूँगा या समुद्र में डूब जाऊँगा या अपना शरीर पक्षियों के अर्पण कर दूँगा अथवा तापस होकर वृक्ष-मूल में बैठा जीवन व्यतीत कर दूँगा परन्तु सीता को देखे बिना पीछे नहीं लौटूँगा। मैं आर्य वीरों के पुरुषार्थ की तरह रावण को ही मार दूँगा या उसे उठाकर समुद्र के ऊपर से ही राम के पास ले जाऊंगा। जब तक मैं यशस्विनी राम-पत्नी को न देख लूंगा, तब तक लंका के स्थानों को ढूंढूंगा अथवा यावज्जीवन इन्द्रियों को वश में रखकर आहार-व्यवहार को नियम से निबाहता हुआ, यहाँ ही रहूँगा, ताकि मेरे वहाँ जाने से जिन अनर्थों के होने की आशंका है, वे न हों ❀

❀ सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके।
चितिं कृत्वा प्रवक्ष्यामि समिद्धमरणीं सुतम्। सु० १३।३६
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलकः।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वा सितेक्षणाम्। सु० १३।
यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तावदेतां पुरीं लंकां विचिनोमि पुनः पुनः। सु० १३।

: १७ :

अशोक वाटिका में प्रवेश

इस प्रकार का विचार कर हनुमान ने सोचा कि लंका में एक बड़ी वाटिका 'अशोक वाटिका' है उसको भी देख लूं, कदाचित वहाँ ही सीता का पता मिले। यह विचार कर हनुमान अशोक वाटिका में चले गये। वहाँ विचरते हुए उन्होंने अनेक प्रकार की रजत स्वर्ण और मणि मूंगा आदि से जटित पृथिवियों को देखा। सब ऋतुओं में फलने वाले वृक्ष और निर्मल सुशीतल जल बहाने वाली नदियां, नाना पक्षियों से युक्त सरोवर तथा बहुत से कृत्रिम पर्वत तथा पर्वतीय पदार्थों को देखा। वहां उन्होंने सोना. चांदी तथा मणि पत्थर की वेदियों से भूषित और नाना वर्ण तथा अनेकों गन्ध वाले पत्र-पुष्पों से भरी लताओं से वेष्ठित वृक्ष देखे। बहुत से ऐसे वृक्षों को भी देखा, जिनकी चमक-दमक सुवर्ण के स्तम्भों व नक्षत्रों के समान थी और जिनके मध्य में चलने से हनुमान पर इतनी प्रभा पड़ी कि हनुमान अपने आपको सोने की देह वाला मानने लगे।

तेषां द्रुमाणाँ प्रभया मेरोरिव महाकपिः।
अमन्यत तदा वीरः कांचनोऽस्मीति सर्वतः। सु० ।१४।३६

इन वृक्षों और इनके फलों को देखकर हनुमान विस्मित हुए इधर-उधर सीता की जाँच के लिए फिरने लगे। बड़ी देर तक भी सीता का पता न पाकर वह एक ऐसी नदी पर पहुँचे जिसका जल बड़ा शुद्ध और पवित्र था तथा अनेकों प्रकार के सहस्रों पक्षी नाना स्वरों से उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।

इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।
न मत्कृते विनश्येयः सर्वे ते नरवानराः। सु० १३।५२

सीता की ईश्वर निष्ठा

इस नदी पर पहुँचकर हनुमान की निराशा की अंधियारी बड़ी सीमा तक दूर हो गई और उन्हें आशा का पुण्य प्रकाश निकट प्रतीत होने लगा। यहाँ पहुँचकर उन्होंने सोचा कि वह राजमहिषि तथा राजकन्या नित्य शुद्ध वायु सेवन की अभ्यासिनी है: अत: प्रात: सायं यहाँ भ्रमण करने के लिए अवश्य आयेगी और दूसरा सबसे बड़ा विचार जो कपिराज के मन में आया वह यह था कि उस समय प्रत्येक आर्य कुमार व कुमारियों के जीवन में नित्यप्रति सन्ध्या करना एक अनिवार्य अङ्ग था। अत:हनुमान को निश्चय हो गया कि—

सन्ध्याकालमनःश्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदी चेमाँ शुभजलाँ सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी। सु० १४। ४६।
तभ्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता। सु० १४।५०।
यदि जीवति सा देवी ताराधिपतिभानुना।
आगमिष्यति सावश्यमिमाँ शीतजलाँ नदीम् सु० १४।५१।

"सन्ध्या काल में सन्ध्या करने के लिए जानकी इस शुभ जल वाली नदी पर निश्चय ही आयेगी क्योंकि उस शुभ वैदिक-पथ पर चलने वाली, महाराज की परम प्रिया जानकी जी के लिए यह नदी और वाटिका सब प्रकार से योग्य है। यदि जानकी जीती है* तो इस शीतल जल वाली नदी पर अवश्य ही आयेगी।"

---

* देखिये! पूर्वकाल की आर्य स्त्रियों के धर्मभाव को कि जिनके धर्मभाव की साक्षी देने में अन्य जाति के पुरुषों का भी इतना दृढ़ विश्वास है, कि यदि वह जीती है, तो अवश्यमेव—

अपां समीपे निर्यात नैत्यिको विधिमास्थितः।
सावित्रीं मध्यधीयते गत्वारण्यं समाहितः"

—मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या करने के लिए अवश्य

: १९ :

सीता की दशा का वर्णन

यह विचार कर हनुमान जब आगे बढ़े तो क्या देखते हैं. कि एक अति कृश स्त्री मलिन भूषणादिक को धारण किये, आँसू बहाती चली आती है और उसकी सुवर्ण समान देह, शोकरूपी धूम से अग्नि ज्वालावत् धूसरित होगई है, तथा उस स्त्री की प्रत्येक चेष्टा से पतिव्रत धर्म की किरणें निकल रही हैं।

इसे देखकर हनुमान ने चित्त में विचारा कि उपवास से कृश, पति वियोग से उदासीन और मन-मलीन सचमुच यह सीतादेवी ही है जिसके लिए राम अहोरात्रि शोक, करुणा और दया से युक्त होते हैं तथा जिसके लिये उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया और अब भी युद्ध के लिए उद्यत हैं तथा जिसके लिए मैंने सागर पार कर लंका में प्रवेश का द्वार देखा। हाँ! है भी सच। इस देवी के निमित्त जितने कष्ट उठाये जायें वह इसके गुणों के आगे तुच्छ हैं। यदि इसके लिए जगत भर के रत्न इकट्ठे कर दिए जायें तो भी इसके आदर्श की उपमा प्राप्त नहीं कर सकते।

यह सती इस पराधीन अवस्था में भी केवल पतिव्रत धर्म को दृढ़ रखती हुई अपने पूज्य पति राम की भक्ति के लिए सारे सुख भोगों को त्याग कर वन के कष्टों का ध्यान न कर, निर्जन वन में निवास करती है। अवश्यमेव इसके पुनः प्राप्त कर लेने से श्रीराम को वैसीही

आवेगी। हनुमान को सीता के जीवित होने में पूरा निश्चय नहीं है पर जीवित होने पर वेद की आज्ञा को पालने में पूरा निश्चय है। क्या इस समय में भी आपने किसी स्त्री में ऐसा दृढ़ व्रत सुना है? सुनें भी कहां से जब कि वेदों के सिद्धान्तों के विरुद्ध शिक्षा देने वाले पुराण आदि ग्रन्थों को आप धर्म ग्रन्थ माने हुए हैं, जिनमें स्त्रियों को शूद्रवत् वेद का अनधिकारी माना गया है।

प्रसन्नता प्राप्त होगी जैसी कि भ्रष्ट राजा को पुनः राज्य प्राप्त करने से होती है।" *

धन्य है इसका पति प्रेम, जो यह काम, भोग, राज्य, इष्ट-मित्र तथा बन्धुओं से हीन होकर भी, न तो राक्षसियों की ओर देखती है, और न इन फल-फूल को ही निहारती है, किन्तु एक चित्त होकर सदा राम का ही चिन्तन कर रही है।

हां, क्यों नहीं, जब कि यह आर्य पुत्री है और आर्य शास्त्रों के जानने वाली है। आर्य शास्त्र बताते हैं कि—

भर्त्ता नाम परं नार्या शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते। सु० १६ २६

"पति ही स्त्रियों का परम भूषण है। पति से वियुक्त स्त्रियाँ शोभा योग्य होने पर भी शोभाहीन हो जाती हैं।"

इस प्रकार दीनमुख होने पर भी राम के तेज से उज्ज्वलित, बन्धुओं की रक्षा से हीन होने पर भी अपने शील की रक्षा से रक्षित सीता को देखकर हनुमान आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगे तथा अपनी यात्रा की सिद्धि के लिये सुख को अनुभव कर राम के गुणों को स्मरण कर उनको मन ही मन प्रणाम करने लगे। +

---

*सर्वान् भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम्। सु० १६।१६
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्। सु० १६।२३

+ तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा।
रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम्॥
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम्। सु० १७.३१

: २० :

हनुमान और सीता का संवाद

अभी हनुमान अपनी कार्य सिद्धि का चिन्तन ही कर रहे थे कि इतने में रात्रि व्यतीत हो गई और ब्राह्म मुहूर्त में उठने वाले तथा वेद-वेदाङ्ग जानने वाले यज्ञकर्त्ताओं ने वेद-ध्वनि करनी आरम्भ कर दी, जिसे सुन उस राक्षस नगरी में भी वैदिक कर्मों की महानता अनुभव करते हुए हनुमान अपने नित्य कर्म में लग गये।

इधर सूर्योदय को निकट जानकर बन्दी तथा भाट लोगों ने नाना विधि स्तुतियों से रावण को जगाया। रावण ने सुख-शय्या से उठकर प्रथम तो आवश्यक कर्म किया और फिर अपने सम्बन्धियों सहित अपना नित्य कर्म समाप्त किया।

नित्य कर्म करने के पीछे विवेक-हीन रावण सीता का कुमार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए अशोक वाटिका में गया।

वहाँ वह सीता को अनेक प्रकार से लोभ और भय दिखाकर अपन अधीन करने की चेष्टा करता है, पर सीता किसी तरह अपने निश्चय से विचलित नहीं होती। अन्त में रावण चला जाता है। तब उसकी आज्ञानुसार राक्षसियाँ अनेक प्रकार से सीता को भय दिखाती हैं। उसी समय त्रिजटा नाम की राक्षसी अपने स्वप्न की बात कह कर सीता को धैर्य देती है और उसकी बातें सुनकर वे घोर राक्षसियां भी शान्त हो जाती हैं। सीता-विरह से व्याकुल होकर विलाप करने लग जाती हैं।

इस सारे बीच में हनुमान विस्मय के साथ सीता, रावण, अन्य राक्षसियों तथा त्रिजटा की सारी बातचीत को सुनते रहे थे। उन्होंने विचारा कि यदि मैं इस अदृष्ट दुःख से दुःखित देवी को बिना आश्वासन दिये चला गया, तो मुझ पर दोष लगेगा। दूसरे मेरे चले जाने पर अपना कोई रक्षक व सहायक न पाकर यह यशस्विनी प्राणों को

त्याग देगी। अतः जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रानन राम आश्वासन देने योग्य हैं, वैसे ही यह जानकी हैं। परन्तु क्या किया जाय ? राक्षसियों के सम्मुख आश्वासन देना असम्भव है। फिर शीघ्र रात्रि व्यतीत होने वाली है। यह भी निश्चित नहीं कि कल को सीता रहे वा न रहे यदि मैं सीता का पूर्ण सन्देश लिए बिना चला गया तब एक तो श्री राम को अपार कष्ट होगा और उससे अनेक अनर्थ होंगे। दूसरे महाराज सुग्रीव के माध्यम से मेरा राष्ट्रोद्धार प्रयत्न भी व्यर्थ ही चला जायगा।

अतः जिस भाँति भी हो सके, मैं सीता को आश्वासन दूँ परन्तु क्या करूँ ? एक ओर तो भारी विघ्न यह है कि - यदि मानुषी भाषा संस्कृत द्विजातियों की भाँति बोलूँ तो सीता मुझे रावण❀ मान कर भयभीत हो जायगी और यदि वानरी भाषा (मात बोली) बोलूँ तो वह समझेगी ही नहीं—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

अस्तु ! जो भी हो मैं सीता को मानुषी राष्ट्रभाषा (संस्कृत) से ही सान्त्वना दूँ।❀

इस भाँति तर्कना करने के पश्चात् हनुमान ने निश्चय किया कि मैं इक्ष्वाकुओं में श्रेष्ठ राम का गुणानुवाद गायन करूं, जिससे कदाचित् सीता मुझ पर श्रद्धा करले और अपना कुशल समाचार बतादे। यह निश्चय कर हनुमान ने राम के जन्म से लेकर वनवास, सीताहरण, सुग्रीव मैत्री तथा उसकी ढूंढ़ के लिए समुद्र पार कर लंका तथा अशोकवाटिका में आना कह दिया।

❀ प्रतीत होता है, रावण की निज भाषा उस समय संस्कृत थी। जिसे वह सीता के सम्मुख प्रायः बोलता था और सीता की भाषा भी संस्कृत थी। साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट है कि हनुमान कई भाषाओं के पण्डित थे।

श्री रघुनाथ जी का आद्योपान्त समस्त चरित्र सुनकर सीता को बड़ा विस्मय हुआ। अध्यात्म रामायण में लिखा है कि अन्त में उन्होंने सोचा कि यह स्वप्न या भ्रम तो नहीं हैं। ऐसा विचार कर वे कहने लगीं—

येन मे कर्णपीयषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः। (५।३।१८)

'जिन्होंने मेरे कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले वचन सुनाये वे प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों।'

यह वचन सुनकर हनुमान जी वृक्ष से नीचे उतर माता सीता के सामने बड़ी विनय के साथ खड़े हो जाते हैं और हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम करते हैं। अकस्मात् एक वानर को अपने सामने खड़ा देखकर सीता के मन में यह शंका होती है कि कहीं रावण तो मुझे छलने के लिए नहीं आ गया है।❀ यह सोचकर वे नीचे की ओर मुख किये हुए ही बैठी रहती हैं। रामचरित मानस में उस समय श्री हनुमानजी के वचन इस प्रकार हैं—

रामदूत मैं मातु जानकी ❀ सत्य सपथ करुना निधान की।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी ❀ दीन्हि राम तुम कह सहिदानी।

इसके बाद श्री जानकी जी के पूछने पर उन्होंने जिस प्रकार वानर-राज सुग्रीव के साथ भगवान श्री राम की मित्रता हुई वह सारी कथा विस्तार पूर्वक सुना दी तथा श्री राम और लक्ष्मण के शारीरिक चिन्हों एवं उनके गुण और स्वभाव का भी वर्णन किया— ये सब बातें सुनकर जानकी जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसङ्ग का वर्णन वाल्मीकीय रामायण में बड़ा विस्तृत और रोचक है।

❀ सीता जी के इस प्रकार के संकेत करने से स्पष्ट है कि शारीरिक दृष्टि से वानर और राक्षसों में कोई अन्तर नहीं था। वानर और राक्षस सभी मनुष्य ही थे। हाँ इस संदर्भ से यह अवश्य प्रतीत होता है कि वानर और राक्षसों की राष्ट्रिय वेश-भूषा में कुछ भिन्नता रही होगी।

: २१ :

हनुमान के मुख से राम का यशोगान

श्रीराम की प्रशंसा में हनुमान जी कहते हैं—

तेजसाऽऽदित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः।३५।९
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः ३५।१०
रामो भामिनि! लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानांच लोकस्य कर्ता कारयिता च सः॥
अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम्।३५।१२
राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः।
ज्ञानवांछीलसम्पन्नो विनीतश्च परंतपः।
यजुर्वेदे विनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठतः।३५।१४

"मातः! राम का मुख चन्द्रमा के समान, नेत्र कमलवत्, तेज सूर्य सम और क्षमा पृथिवी के तुल्य है। वह बुद्धि से बृहस्पति, यश से देवराज इन्द्र की उपमा रखते हैं। वह जीवलोक के रक्षक, अपने बन्धुओं की रक्षा करने वाले, परम तपस्वी होकर अपने व्रत (आचार) और धर्म के रक्षक हैं। हे भामिनि! राम चारों वर्णों की मर्यादा के बनाने तथा रक्षा करने वाले हैं। राम सबसे पूजित होकर भी ब्रह्मचर्य धारण करने के हेतु सदा प्रकाशमान रहते हैं।

"राम साधुओं के उपकार को मानने वाले, सत्कर्मों के प्रचार को जानने वाले, राजनीति में विनीत, ब्राह्मणों के उपासक और ज्ञान

तथा शील से सम्पन्न हैं। यजुर्वेद में निपुण, वेदज्ञ पुरुषों से पूजित धनुर्वेद तथा अन्यान्य वेदाङ्गों में निपुण हैं।"

सत्यधर्मरतः श्रीमान्संग्रहानुग्रहे रतः।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोक प्रियंवदः। सु० ३५ २१
भ्राता नास्य च वैमात्रः सौमित्ररमितप्रभः।
अनुरागेण च रूपेण गुणैश्चापि तथाविधिः।सु० ३५।२२

सारांश यह कि, राम सत्य धर्म में रत, लक्ष्मीवान् संग्रह और अनुग्रह में प्रवीण, देश काल के जानने वाले तथा सर्व लोगों से मीठा तथा हितकारी वचन बोलने वाले हैं। उनके दूसरे भाई लक्ष्मण भी महा प्रभा वाले, स्नेह तथा अन्य गुणों में राम के ही समान हैं।"

वे दोनों भाई तुमको ढूंढ़ते हुए वानरराज सुग्रीव को जो कि बड़े भाई बाली से अपमान पूर्वक गृह से निकाले हुए थे, ऋष्यमूक पर्वत पर मिले। वहाँ दोनोंकी परस्पर परम प्रीति हो गई तथा सुग्रीव महाराज ने तुम्हारे ढूंढ़ने की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए मुझे यहाँ भेजा है।

देवि ! राम तुम्हारे दर्शन के लिए सन्तप्त हो रहे हैं—

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम्।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यागारमिवाग्नयः। ६५।४६

"तुम्हारे वियोग में महात्मा राम को अनिद्रा, शोक तथा चिन्ता इस भाँति जलाते हैं जैसे अग्नियां अग्नि-भवन को जलाती हैं।

देवि ! शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण, वीर्यवान् तुम्हारे पति की आराधना में शिष्यवत् लगे हुए हैं केवल मैं सुग्रीवकी आज्ञासे फिरता-फिरता तुम्हारे दर्शनों के लिए यहाँ आया हूँ। अब इस शुभ सम्वाद से तुम्हारे दर्शन रूपी सन्देश से अनेकों भयग्रस्त वानरों के शोक को दूर करूंगा। मेरा लंका में आना व्यर्थ नहीं गया, क्योंकि तुम्हारे दर्शन रूपी यश की प्राप्ति मुझे ही हुई है। सीते ! तुम्हारे भी शोक का अन्त अब निकट आया हुआ है क्योंकि अब रघुकुल तिलक श्रीराम

शीघ्र ही रावण को उसके पुत्र पौत्र और सम्बन्धियों सहित नाश करके तुमको प्राप्त होंगे तथा यहाँ से आपको वह अपने साथ ले जावेंगे।

यह सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई और उसने हनुमान का गुणानुवाद करके उनके विषय में अपना विश्वास प्रगट किया।

× × × ×

: २२ :

सीता को राम की अगूँठी देना

सीता को यद्यपि हनुमान के विषय में राम के दूत होने का अब सन्देह नहीं रहा था, तथापि इस विश्वास को दृढ़ करने के लिये हनुमान जी ने राम की अंगूठी सीता को अपर्ण कर दी जिसे पाकर सीता को इतना आनन्द हुआ जैसे कि उन्हें राम ही मिल गये हों उस समय सीता का मुख इतना कान्तियुक्त प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा ग्रहण से मुक्त हुआ है। अंगूठी पाकर प्रसन्न हुई सीता ने हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा—

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्। सु० ३६।७
शतयोजन विस्तीर्णः सागरो मकरालयः
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः।३६।८
न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः।३६।९
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ! मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना।३६।१०
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम्।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः।३६।११

"हनुमान! तुम बड़े शूरवीर, समर्थवान् और बुद्धिमान् हो जो तुमने अकेले ने ही इस राक्षसों के स्थान को तिरस्कृत कर दिया

है। धन्य है तुम्हारे पुरुषार्थ को, जिसने बड़े-बड़े भयंकर जल-जन्तुओं से युक्त समुद्र को तुच्छ जानकर पार कर लिया। इसलिए मैं तुम्हें साधारण वानर नहीं समझती। निश्चय ही तुमको रावण से भय व त्रास नहीं है। अतः हे वानर श्रेष्ठ ! तुम मुझसे वार्तालाप आदि करने के योग्य हो, क्योंकि आत्म-वेत्ता राम ने तुमको भेजा है। राम अपरीक्षित पुरुष और विशेष कर पराक्रम-हीन पुरुष को मेरे पास कभी नहीं भेज सकते।"

रामचरित मानस में श्री तुलसीदास जी ने बहुत ही संक्षेप में इसे इस प्रकार कहा है—

कपि के वचन सप्रेम सुनि उपजा मन विश्वास।
जाना मन क्रम वचन यह कृपासिंधु कर दास॥
कपिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी ❀ सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।

इसके बाद महा तेजस्वी पवनकुमार हनुमान ने सीता जी को भगवान श्रीराम की दी हुई अगूंठी दी, जिसे लेकर वे इतनी प्रसन्न हुईं, मानो स्वयं भगवान राम ही मिल गये हों।

उस समय वे हनुमान जी से कहती हैं—

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना ❀ भयहु तात मो कहुँ जलजाता।
अब कह कुशल जाउँ बलिहारी ❀ अनुज सहित सुख भवन खरारी।
कोमल चित कृपाल रघुराई ❀ कपि केहि हेतु धरी निठुराई।
सहज बानि सेवक सुखदायक ❀ कबहुक सुरति करत रघुनायक।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता ❀ होइहि निरखि स्याम मृदु गाता।
बचनु न आंव नयन भरि बारी ❀ अहह नाथ हौं निपट बिसारी।

यों सीता को विरह-व्याकुल देखकर हनुमान कहते हैं—

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता ❀ तव दुख दुखी सुकृपा निकेता।
जनि जननी मानहु जियँ ऊना ❀ तुम्ह ते प्रेमु राम के दूना।
रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे विलोचन नीर॥

इसके बाद बड़ी बुद्धिमानी के साथ श्री राम जी के प्रेम और बिरह-व्याकुलता की वात श्री हनुमानजी ने माता सीता को सुनायी। अन्त में कहा कि श्री रामचन्द्र जी ने कहा है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

इस प्रकार श्री राम का प्रेम पूर्ण सन्देश सुन कर सीता प्रेम में मग्न हो गयीं, उन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं रहा। तब हनुमान जी फिर कहते हैं—

उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥
निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयं धीर धरु जरे निसाचर जानु॥

अध्यात्म रामायण में लिखा है कि बातों ही बातों में सीता ज़ी ने जब यह पूछा कि वानर-सेना के सहित श्री राम इस बड़े भारी समुद्र को पार कर यहाँ कैसे आ सकेंगे ? तब—

हनुमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ।
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥
बिहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥
(सु० २।४६-४७)

'हनुमान ने कहा—वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कन्धों पर चढ़कर आ जायेंगे और समस्त सेना के सहित बानर राज सुग्रीव भी आकाश मार्ग से क्षणमात्र में ही इस महा समुद्र से पार होकर आ जायेंगे।'

हनुमान के आशा भरे शब्दों को सुनकर सीता में इस प्रकार जीवन वा आनन्द आ गया जैसे कुछ-२ उभरी हुई खेती में वर्षा होने से आ जाता है। इसी आनन्द में सीता ने अपना सन्देश हनुमान को बड़े नम्र स्वर में पुनः स्मरण कराया और चलते हुए हनुमान की स्तुति युक्त शब्दों से धन्यवाद किया।

: २३ :

वाटिका-विध्वंस

सीता से विदा होते हुए हनुमान ने उचित समझा कि वीरों को शत्रुदल में से चुपचाप जाना शोभा नहीं देता, अतः कुछ परिचय देना चाहिए। इस विचार से उन्होंने रावण की अति प्रिय अशोक-वाटिका का बिगाड़ना आरम्भ कर दिया. जिसे देख कर राक्षसियों ने पहले तो सीता से पूछा कि यह कौन है, यहां कैसे आया है, और तेरे साथ क्या बातचीत करता था ? उत्तर में सीता ने कुछ न बताया वरन् यह कह दिया कि मैं तो राक्षसों की माया को नहीं जानती। साँप के पाँव को सांप ही जान सकता है।

रावण का कोप और हनुमान का साहस

तब राक्षसियों ने रावण को हनुमान द्वारा अशोक-वाटिका के विध्वंस की सूचना दी। वाटिका का विध्वंस सुनकर क्रोध से लाल-लाल नेत्र करके रावण ने बड़े-बड़े वीर योद्धाओं को हनुमान के पकड़ने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही राक्षस शस्त्र-अस्त्रों से सज्जित होकर हनुमान के पास जाकर उनको धमकाने लगे।

राक्षसों के इस व्यवहार को देखकर तेजस्वी हनुमान वीरता के शब्दों को उच्चार कर 'अतिबली राम, महाबली लक्ष्मण तथा राम मित्र महाराजा सुग्रीव की जय' ऐसा कहने लगे—

जयत्यतिबली रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः। ४२।३३
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमांछत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः। ४२।३४
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहस्तः पादपैश्च सहस्रशः। ४२।६५

अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीन् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ।४२।३३

"राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव की लंका में जय हो !" इन शब्दों को सुनकर और क्रोधित हुए राक्षसों ने जब इनका नाम-धाम पूछा तो हनुमान ने कहा कि—

"मैं उच्च कर्मा कौशलेन्द्र (राम) का दास व शत्रु-सेना का हन्ता पवन पुत्र हनुमान हूँ । सहस्रों रावण भी शस्त्र-अस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध में मुझे नहीं जीत सकते । लंकापुरी को तहस-नहस कर माता सीता को प्रणाम करके अब सब राक्षसों के देखते-देखते अपने कार्य-सिद्धि करके मैं जाऊँगा ।"

यह सुनकर रावण की आज्ञा से अनेकों राक्षसों ने हनुमान को अपशब्द कहे, जिनका योग्य उत्तर हनुमान ने उसी समय दे दिया। तब फिर राक्षस हनुमान की वीर कथा के सुनाने के लिए रावण के पास गये और विशेष उपाय से हनुमान के पकड़ने का प्रवन्ध करने लगे ।

: २४ :

हनुमान से राक्षसों का युद्ध

अब राक्षसों को अपने बल का परिचय देने के लिए हनुमान ने वीरकृत्य आरम्भ कर दिये, जिसे सुनकर रावण की आज्ञा से युद्ध में दुर्जय महाबली जम्बुमाली नाम का राक्षस धनुष धारण कर स्वरयुक्त रथ में हनुमान को पकड़ने की इच्छा से आया ।

हनुमान ने भी उसे देखकर वीरता का शब्द किया और युद्ध आरम्भ हो गया । महाबली हनुमान ने उसके सारे शस्त्रों-अस्त्रों को छिन्न-भिन्न कर एक प्रहार से ही उसे ऐसा मारा कि वह तत्क्षण गिर पड़ा और मर गया । जम्बुमाली के वध को सुनकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ तथा उसने अपने मन्त्री के वीर और अस्त्र विद्या में निपुण

अनेक पुत्र युद्ध में भेजे। थोड़ी देर तक उन्होंने वाणों की ऐसी बौछार की जैसे कि वर्षा काल के मेघ वृष्टि करते हैं। परन्तु ज्योंही हनुमान ने उनके प्रहारों से अपने आपको बचाकर उन पर प्रहार करने आरम्भ किये, वे झट पृथ्वी पर गिरने लगे। यहां तक कि दिन अस्त होने से पूर्व ही वे सब प्राण त्याग गये।

मंत्री-पुत्रों का वध सुनकर रावण को बड़ी चिन्ता हुई, अतः उसने बड़े-बड़े विद्वान व युद्ध विद्या-विशारदों की सभा बुलवाई तथा उसमें सबके सामने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस तथा भासकर्ण आदि सेना नायकों को सम्बोधन कर कहा—

"वीरो! जाओ उस कपि को बांधो, जिसने इतने उग्र कर्म किये हैं। परन्तु इसमें नीति शास्त्र से देशकाल का विचार कर लेना योग्य है, क्योंकि मैं इसे साधारण वानर नहीं मानता। इसे साधारण समझ मेरा मन निश्चिन्त नहीं होता। मैंने कई बार वानर जाति के बड़े-बड़े बलधारी पुरुष देखे हैं। अर्थात् बाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान, सेनापति नील और अन्यान्य द्विविद (दो वेदों के जानने वाला) आदि देखे परन्तु उनमें कभी इस जैसी न भीम गति, न तेज, न पराक्रम, न बुद्धि, न बल न उत्साह और न ही रूप लावण्य देखा। इसलिए इसे बड़ो सत्ता वाला तथा महा शक्तिधारी पुरुष समझना चाहिए। अतएव इसके पकड़ने के निमित्त कोई बड़ा यत्न करो।

कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुराऽसुरमानवाः।
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे। सु० ४६।१५
तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे।
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चंचला। सु० ४६।१६

"यद्यपि सुर, असुर तथा मनुष्य आप लोगों के आगे ठहर नहीं सकते, तो भी जय के अभिलाषी नीतिमान पुरुष को अपनी रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि युद्ध में सिद्धि (जय) चंचल होती है।"

स्वामी की आज्ञा पाकर अनेकों योद्धाओं सहित विरूपाक्ष आदि पाँच सेनानायक हनुमान को पकड़ने के लिए गये और जाते ही हनुमान पर प्रहार करने लग गये। तब महायोद्धा वीर-नायक वेदवित् हनुमान ने पहले अपनी रक्षा का उपाय किया अर्थात् उनके प्रहारों को सहा परन्तु ज्योंही वे अधिक क्रूरता करने लगे, तब थोड़ी देर में बारी-बारी से इनकी सेना सहित पाँचों नायकों को मार दिया और स्वयं इनको सहायता को आने वाले राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो गये।

वाल्मीकीय रामायण में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। श्रीहनुमान जी के अतुलित पराक्रम का चित्र खींचते हुए वहाँ लिखा है—

तलेनाभ्यहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित्परंतपः।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत्।
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि।।
(सु० ४५। १२-१३)

हनुमानजी ने उन राक्षसों में से किसी को थप्पड़ मारकर गिरा दिया, कितनों को पैरों से कुचल डाला, कइयों का मुक्कों से काम तमाम कर दिया और बहुतों को नखों से फाड़ डाला। कुछ को छाती से रगड़कर उनका कचूमर निकाल दिया तो किन्हीं-किन्हीं को दोनों जाँघो से दबोचकर पीस डाला। कितने ही राक्षस तो उनकी भयानक गर्जना से वहां पृथ्वी पर गिर पड़े।

: २५ :

हनुमान का पकड़ना

इन पाँचों सेनापतियों के मारे जाने पर रावण ने "कुमार अक्षय" को कुछ योधा देकर भेजा और जब वह भी मारा गया तो बड़ा दुःखी व विस्मित होकर रावण ने इन्द्रजित् (मेघनाद) को बुला कर आज्ञा दी, कि वीर! तू सब लोगों में अनुपम योधा और भुजबल

में प्रसिद्ध है तथा तप और विद्या के प्रभाव से देश-काल को भी जानता है। जा, जाकर हनुमान को पकड़ ला क्योंकि उसने अनेकों किंकर मार दिये हैं तथा जांम्बुमाली, अमात्यपुत्र, पञ्चसेनानी और बहुत से दूसरे योधा नाश किये हैं और अब कुमार अक्षय को भी मार डाला है। देख तू यह विचार कभी मत करना, कि जिसने इतने-२ बड़े योद्धा मार दिये उस पर मेरा क्या वश चलेगा। क्योंकि उनमें वह बल न था जो तुझमें है इसलिए जा, शीघ्र उसे पकड़ कर ले आ।

न खल्वियं मतिश्रेष्ठ ! यत्त्वां सम्प्रेषयाम्यहम्।
इयंच राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता। सु० ४८।१३
नानाशास्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यमन्दिरम्।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे। सु० ४८।१४

"प्रिय पुत्र! इस महा संकट में तुझे भेजने को मेरी इच्छा नहीं थी, पर राजपुत्र! क्या करूँ राजधर्म तथा क्षत्रिय-धर्म की नीति ही यह है।"

"हे शत्रुदल दमन कर्ता! नाना शास्त्रों में निपुणता और जय की उत्कट कामना, यह दो बातें युद्ध में योधओं को सहायता देती हैं।

राजा की आज्ञा पाकर रथ में बैठ, शस्त्र-अस्त्रों से युक्त मेघनाद हनुमान के साथ युद्ध करने गया। कुछ काल तक मेघनाद तथा हनुमान का बड़ा तुमुल युद्ध हुआ परन्तु जब हनुमान ने अपना युद्ध-कौशल तेजी से दिखाना आरम्भ किया तब मेघनाद को निश्चय हो गया कि यह वीर मुझ से मारा नहीं जा सकता। अतः हो सके तो इसे बाँध लेना चाहिए।

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित्।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित्। ४८।३७
तेनबद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले। ४८।३८।

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मो गुणदर्शनम् ।
राक्षसेन्द्रेण सम्वादस्तस्माद् गृह्णतु मां परे ।४८।४८।

यह निश्चय कर मेघनाद ने दूर से ही एक अस्त्र फेंककर हनुमान को बांध दिया। बन्धन पड़ते ही हनुमान एक बार तो निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े पर ज्योंही उनको चेतना हुई और उन्होंने जाना कि राक्षसों ने इसलिए निग्रह अस्त्र डाला है कि "वे मुझे पकड़ कर राक्षसेन्द्र रावण के पास ले जाएं" तो उन्होंने विचारा कि इसमें भी मुझे लाभ ही होगा, क्योंकि अब मैं इस बहाने रावण की राजसभा में जाकर रावण से संवाद तो कर सकूँगा जिससे मुझे उसकी रीति-नीति का स्पष्ट पता लग जावेगा।

: २६ :

रावण सभा में हनुमान

अध्यात्म रामायण में लिखा है कि इसके वाद हनुमान जी रावण की सभा में लाये गये, वहाँ पहुँचकर उन्होंने समस्त सभा के बीच में बड़े सज-धज के साथ राजसिंहासन पर बैठे रावण को देखा। हनुमान जी को देखकर रावण को मन ही मन बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि यह भयंकर वानर कौन है ? बहुत सी तर्कणा करने के वाद रावण ने प्रहस्त से कहा —

प्रहस्त पृच्छनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एद वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥
(५ । ४ । ५)

'प्रहस्त ! इस वानर से पूछो, यह यहाँ क्यों आया है ? यहाँ इसका क्या काम है ? यह आया कहाँ से है ? तथा इसने मेरा समस्त

बगीचा क्यों नष्ट कर डाला ? और मेरे राक्षस वीरों को बलात्कार से क्यों मार डाला ?'

रावण की आज्ञा से प्रहस्त बोला कि—

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः नार्यात्वया कपे ५०।७
यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।
तत्वमाख्यहि मा ते भूद्भयं वानर ! मोक्ष्यसे । ५०।८
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च ।
चाररूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् । ५०।९
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकांक्षिणा ।
न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रन्तु वानरम् । ५०।१०
तत्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ।
अनृतं वदतश्चाति दुर्लभं तव जीवितम् । ५०।११

"हे वानर ! विश्वास रख कि तुझे किसी प्रकार का भय न होगा । सच कह कि क्या तुझे रावण की पुरी में इन्द्र ने भेजा है अथवा तू कुबेर यम, वरुण का दूत है, जो लंका में आया या तुझे जय की कामना वाले विष्णु ने भेजा है ? सच २ कह, तब तुझे छोड़ दिया जायगा । यदि तूने झूठ बोला, तो तेरा जीवन ही दुर्लभ है । किसलिये तेरा यहाँ आना हुआ है, सो बता ?

मंत्री का वचन सुनकर हनूमान बोले, "न मैं इन्द्र, यम वरुण का दूत हूँ न कुबेर से मेरी मैत्री है । न मैं विष्णु का भेजा हुआ हूँ, मेरी जाति वानर ही है । मैं राक्षसेन्द्र के दर्शन के लिए आया हूँ, क्योंकि यह मेरे लिए दुर्लभ था । उपवन-विनाश भी मैंने राक्षसराज के दर्शन के निमित्त ही किया है । वहाँ युद्ध की इच्छा से बड़े-२ बलाभिमानी राक्षस पहूँच गए तब अपनी रक्षा के लिए मैंने युद्ध किया—

रक्षणार्थं तु देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे । ५०।१५

"मैं पवन-सुत और महातेजस्वी राम का दूत हूँ ।

'पवन पुत्र'—इतना सुनते ही रावण ने ऊपर से नीचे तक ध्यान पूर्वक देखा और आश्चर्य तथा विस्मय की मुद्रा में कहा—तुम तो रत्नपुर के राजा वीरता शौर्य के भण्डार वानर श्रेष्ठ पवन कुमार के यशस्वी पत्र महावीर हनुमान हो ! तुम तो हमारे मित्र वर्ग में से हो तुम्हारे ही पौरुष पूर्ण सहयोग से तो हमने देवराज कुवेर को विजय कर उससे पुष्पक विमान छीन लिया था। तुम तो हमारे पुत्र ही नहीं पौत्र तुल्य हो, फिर तुम यहाँ इस रूप में कैसे ?

हनुमान जी ने तब सविस्तार बताया कि उनका जन्म तो राक्षसों के अन्याय, राक्षसी सभ्यता, वामाचार और ऋषि-मुनियों को कष्टित करने रूप आपके पापों के प्रतिकार के लिए ही है वानर राष्ट्र और सम्पूर्ण आर्यावर्त्त से प्रच्छन्न भौतिकवादी राक्षसी सभ्यता को हटाकर अध्यात्म और भौतिकता समन्वित वैदिक संस्कृत की ध्वजा लहराना ही मेरा जीवन ध्येय है। इसी ध्येय के लिए मेरा जीवन अर्पित है।

'तो क्या तुम्हारे द्वारा राज-द्रोह के विषय में दो-एक बार जो कुछ सुना गया था, वह ठीक था ?" रावण ने साश्चर्य दुहराया।

हाँ, महाराज ! मेरे राष्ट्रोद्धार के प्रयासों के विषय में आपने सर्वथा ठीक ही सुना होगा। मुझे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा थी, और वह समय आ गया है। फिर भी अब आप मेरा पथ्य रूप वचन श्रवण करो। राक्षसेन्द्र ! मैं सुग्रींव के संदेश से तेरे पास आया हूँ। तेरा भ्राता वानर राज सुग्रीव तुझे कुशल समाचार देता है। अब तू अपने महात्मा भाई सुग्रीव का धर्मार्थ, युक्त लोक परलोक में सुख देने वाला सन्देश सुन—

"अयोध्या में बड़ी सेना वाले, समृद्धशाली, इन्द्र सम प्रतापी तथा पिता के समान प्रजा की पालना करने वाले राजा दशरथ के अति प्रिय महाबाहु ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम पिता की आज्ञा से दण्डक वन में आये हैं। उनके साथ भ्रातृ भक्त छोटा भाई लक्ष्मण तथा राम

की पतिव्रता पत्नी विदेह राज महात्मा जनक की पुत्री सीता जी भी आई थी।"

"वन में राम की स्त्री सीता लोप हो गई, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। सीता को ढूंढ़ते हुए वह दोनों राजपुत्र ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने सीता के ढूंढ़ने की प्रतिज्ञा की है तथा राम ने सुग्रीव से उसका राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की थी सो राम ने एक ही वाण से बाली को मार कर सुग्रीव को राज्य दिला दिया है। तुम जानते ही हो, कि बाली कैसा बली था ? किन्तु उसे राम ने एक ही वाण से मार दिया।

: २७ :

रावण को उपदेश

इस प्रकार राम-कथा सुनाकर हनुमान फिर रावण को उपदेश करने लगे, "नर शार्दूल ! यदि तुम कहो, कि सीता यहाँ नहीं है, तो निश्चय रखिये मैंने सीता देवी देख ली है, जो कि मेरे लिए दुर्लभ कर्म था। यदि तुम सीता राम को अर्पण नहीं करोगे तो समझ लेना, कि सीता को राम ले जायेंगे। विश्वास रखो कि सीता किसी को उसी प्रकार नहीं पच सकतीं, जैसे कि विष युक्त अन्न। तुम सीताको घर में रखते हुए भी उसके फल को नही जानते हो। स्मरण रखो कि तुम्हारे लिए वह पंचमुखी सर्पिणी ही है।"

"महाराज ! आपने जो पूर्व जन्म कृत तप तथा धर्मानुष्ठान से ऐश्वर्य वा दीर्घ जीवन प्राप्त किया है सो इस पर-स्त्री-हरण रूपी अधर्म से नष्ट करना उचित नहीं है। जो आपका यह विचार हो कि पूर्व संचित धर्म से यह किंचित् अधर्म नष्ट हो जायगा सो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यह साधारण दुष्ट कर्म नहीं प्रत्युत् महा अधर्म है और इसका फल कभी टल नहीं सकता।"

प्राप्तं धर्मफलं तावभ्दवता नात्र संशयः।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेत्र प्रपत्स्यसे ।५१।२१

"राक्षसेन्द्र ! जिस प्रकार तूने पूर्व कृत तप और धर्म का फल पाया है, इसी प्रकार अब शीघ्र ही इस अधर्म का फल पायगा।"

जनस्थानवधं बुद्ध्वा बालिनश्च बधस्तथा ।
रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः ।५१।३०
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगण संन्निधौ।
उत्साहदनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ।५१।३२
अपकुर्वन् हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः।
न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ।५१।३३
याँ सीतेत्यभिजानासि येयं निष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति ताँ विद्धि सर्वलंकादिनाशिनीम् ।५१।३४
तदलं कालपाशेन सीता विग्रहरूपिणा।
स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम् ।५१।३५
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रदीपितांम् ।
दह्यमानामिमाँ पश्य पुरो साट्टप्रतोलिकान् ।
यो रामं प्रतियुद्ध्ये। विष्णुस्तुल्यपराक्रमम् ।
सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ।५१।४२

"राजन् ! यदि तुझे पाप से भय नहीं, तो नीति शास्त्र के अनुसार ही राक्षसों का वध, वाली का मरण, राम और महाराज सुग्रीव की मैत्री को देखकर, अपना हित चिन्तन कर, क्योंकि आर्य पुत्र राम ने वानर और ऋक्ष गणों के सामने प्रतिज्ञा की है कि जिन दुष्टों ने सीता हरण किया है, उनका मैं नाश करूंगा। तुम्हें विदित रहे, कि राम का अहित करके इन्द्र भी सुख नहीं पा सकता, फिर तुम जैसे साधारण पुरुषों की तो कथा ही क्या है ? रावण ! सच तो यह है कि जिसे तुम सीता देवी समझते हो वह तुम्हारे लिए काल रात्रि है, जो सारी लंका को नष्ट कर देगी। अतएव तुम सीता देह रूपी काल-

पाश में फंसकर स्वयं अपना हनन मत करो, किन्तु अपनी रक्षा का विचार करो और सीता के तेज से दग्ध, तथा राम के कोप से सदीप्त होकर बड़े २ राजमहलों युक्त लंका को भस्म हुई समझ कर सीत को प्रसन्नता से राम को लौटा दो। उन्हें लंका में रखकर अपने मित्र, नीति-निपुण मन्त्री, सजातीय बन्धु, भाई, पुत्र, हितू वर्ग, भोग, ऐश्वर्य, स्त्री गण और लंका को व्यर्थ में नष्ट मत करो। यह मेरा कहना सत्य ही मानो। यदि तेरा विचार राम से युद्ध करने का हो, तो मैं तुझे कहे देताहूँ कि राम को जीतना तो कहाँ वरन् महापराक्रमी विष्णु समान बली राम के सामने तेरा जीवित रहना भी कठिन है।'

हनुमान के वध की आज्ञा और विभीषण की उचित सम्मति— इस प्रकार महावीर के सत्य और निर्भीक वचनों से क्रुद्ध होकर रावण ने उनको वध करने की आज्ञा दी जिसे सुन कर महात्मा विभीषण ने इस आज्ञा के विरुद्ध राक्षसेन्द्र से कहा कि—

"महाराज ! इस कपि के मारने में किसी प्रकार का लाभ नहीं दिखाई देता। यही दण्ड आप उनमें प्रयोग करो जिन्होंने इनको भेजा है।

साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः।
ब्रुवन्परार्थं परवान न दूतो वधमर्हति। ५२।२१

"यह साधु है वा असाधु किन्तु दूसरों ने इसे भेजा है। उनके लिए बोलता हुआ पराधीन है, इसलिए यह वध के योग्य नहीं है। इस दूत के मार देने पर फिर कोई अन्य व्यक्ति दूत कर्म नहीं करेगा। इसलिए भी इसका वध अयुक्त है क्योंकि ऐसा करने में नीति भङ्ग होती है।"

महात्मा विभीषण के शास्त्र विहित वचनों से विवश होकर रावण बोला, भ्राता ! तूने ठीक कहा है कि दूतों का वध करना निन्दा के योग्य कर्म है। इसलिए वध के अतिरिक्त कोई उचित दत-दण्ड नियत करो।

: २८ :

लाँगूल दाह और लंका दाह

कपीनाँ किल लाँगूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यताँ शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु । सु० ५३।३

"वानर लोगों का बहुत प्यारा और पवित्र भूषण "लांगूल" होता है सो इसका यही दग्ध कर दो, जिससे हीन हुआ यह अपना बहुत अपमान समझेगा तथा स्वदेश जाने पर इसके बन्धु, मित्र वा जाति के लोग लज्जित करेंगे ।"

+लांगूल वास्तव में वानर जाति का एक जातीय भूषण था, जिसका पराये हाथ से बिगड़ जाना वे जातिमात्र का अपमान समझते थे, जैसा कि आजकल अंग्रेज लोग टोपी का या सिख पगड़ी वा केशों का पठान कुरान का, आर्य (हिन्दु) यज्ञोपवीत का, राजपूत खण्डे का समझते हैं । इसी बिचार से रावण ने यह दण्ड विचार किया, क्योंकि इसे वह महादण्ड जानता था । लांगूल नामक पुच्छ के होने से जिन्होंने हनुमान को पशु बना लिया उन्होंने लांगूल को पूंछ बना लिया, परन्तु यदि वास्तव में लांगूल पुच्छ का वा किसी अङ्ग बिशेष का नाम होता तो रावण वा० रा० सुन्दर कांड सर्ग ५३ के उपर्युक्त श्लोक में 'इष्टंभवति भूषणं' न कहकर अंगम् भवति ह्यु्त्तमम्' कहता । एक जैनी पण्डित ने हमें बताया था कि दशरथ जातक में "लाँगूलः' कर-कंकण का नाम है । सम्भावना भी यही है कि वह कर कंकण बीरता का पदक होता हो ।

लंका-दाह अलंकारिक प्रयोग भी हो सकता है । राजनीति विशारद हनुमान ने अपने राजनीति-कौशल से विभीषण और उसके कुछ साथियों को अपने पक्ष में कर लंका में फूट की आग लगाई थी । किन्हीं के अनुसार महावीर ने अपने शौर्य प्रदर्शन द्वारा लंकावासियों के हृदय में भय और चिन्ता की अग्नि लगा दी थी ।

रावण की आज्ञा पाकर दूतों ने हनुमान के लाँगूल' को उतार आग लगा दी और उसे सभा से बाहर निकालकर सारे नगर में इस दण्ड की घोषणा करदी जिससे अनेकों धर्मात्मा पुरुषों और सीता को कष्ट हुआ। हनुमान इस दण्ड से बहुत दुःखी हुए और इसका उत्तर उन्होंने यह विचारा कि, जिस प्रकार लंकापति ने मेरा उत्तम भूषण नष्ट किया है, उसी प्रकार मैं लंका के भूषण अशोक-वाटिका को नष्ट करूँगा जो इस नगरी का विशेष अलंकार रूपी गर्भस्थान है। इस विचार के अनुसार अवसर पाकर उन्होंने लंका को आग लगा दी। जब वह जलकर भस्म होने लगी तब क्रोध का आवेग कम होने पर हनुमान के मन में कुत्सा (आत्म-निन्दा) उत्पन्न हो गई जिससे खिन्न हो वे सोचने लगे, कि मैंने यह अच्छा नहीं किया। वे सोचते हैं—

धन्याः खलु महात्मनो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मनो दीप्तमग्निमिवाम्भसा। ५५।१
क्रुद्धः पापं न कः कुर्यात्क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षपेत्। ५५।४
वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्।५५।५
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते। ५५।६
धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमं।
अचिंतयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम्। ५५।७
यदि दग्धात्वियं सर्वां नूनमार्यापि जानकी।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता। ५५।८

'धन्य हैं वे महात्मा लोग जो उत्पन्न हुए क्रोधको वैसे ही बुद्धि से से रोक लेते हैं, जैसे कि जल से प्रज्वलित अग्नि शान्त हो जाती है।'

'यदि क्रोध को न रोका जाय तो क्रोधवश पुरुष क्या पाप नहीं करता ? क्रोध के वशीभूत होकर गुरुजनों को भी मार देता है और न

करने योग्य कर्म भी कर डालता है और न बोलने योग्य वचन बोल देता है। जो पैदा होते क्रोध को साँप की कंचुकीवत् परे फेंक देते हैं वास्तव में वही पुरुष धन्य हैं। धिक्कार मुझको कि जिसने क्रोधवश अग्नि लगाते समय सीता का भी ध्यान न किया, क्योंकि सीता को उस अग्नि से हानि पहुँची तो मेरा सारा यत्न ही व्यर्थ हो जायेगा तथा मै सदा के लिए स्वामी की दृष्टि में अविचारी ठहरूंगा।

: २९ :

हनुमान का लौटना

इस सन्तोष के पीछे वह सीता की सुध के लिए फिर सीता की कुटी में गए और सीता को प्रसन्न देखकर अपने स्थान को लौटने की आज्ञा माँगी। तब माता सोता ने कहा कि हनुमान! तुम्हें देखकर मैं अपने दुःख को भूल गयी थी, अब तुम भी जा रहे हो तो बताओ अब मैं भगवान् श्री राम की कथा सुने विना कैसे रह सकूंगी?" अध्यात्म रामायण में उस समय श्री हनुमान जी के वचन इस प्रकार हैं –

यद्य वं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि॥

"देवि जानकी! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो मेरे कन्धे पर चढ़ जाइए, मैं एक क्षण में ही आपको श्री राम जी से मिला दूँगा।

वाल्मीकीय रामायण में और भी विस्तृत वर्णन है। वहाँ हनुमान जी के इस प्रस्ताव पर श्री जनक नन्दिनी कहती हैं—'हनुमान! स्वेच्छा से किसी पुरुष को कैसे स्पर्श कर सकती हूँ। श्री राम वानरों के साथ यहाँ आकर रावण को युद्ध में मार कर मुझे ले जायें इसी में उनकी शोभा है। इसलिए तुम जाओ, मैं किसी तरह कुछ दिन प्राण धारण करूँगी।"

इसके बाद रामचरित मानस में हनुमान जी के वचन इस प्रकार हैं—

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।

तब सीता जी ने अपनी चूड़ामणि हनुमान जी को दी, उसे पाकर हनुमान जी बड़े प्रसन्न हुए।

लंका में इस प्रकार कृतकार्य हो तथा सीता को पूरी सान्त्वना देकर हनुमान फिर उसी मार्ग से अपने देश को लौटे और मार्ग में तैरते २ सागर के मध्य में सुनाभ (मैनाक) पर्वत पर आ टिके और वहाँ उन्होंने पूर्ववत् जलपानादि किया और विश्राम लेकर आगे चले

आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम्।
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान्। सु० ६७।१३

मैनाक से चलकर ज्योंही समुद्रके दूसरे पार पहुँच कर हनुमान ने हर्ष शब्द किया त्योंही जाम्बवान्, अङ्गद आदि सब वानरों ने जान लिया कि सब तरह से कृतकार्य होकर हनुमान आ रहे हैं, क्योंकि बिना कार्य सिद्धि किये लौटने पर ऐसा हर्ष सूचक शब्द नहीं हुआ करता।

समुद्र पार कर जब हनुमान महेन्द्र पर्वत पर पहुँचे, जहाँ कि सब साथी बैठे हुए थे तो सबको बड़ा हर्ष हुआ। आपस में सत्कार-सम्मान के पीछे सब सीता के समाचार पूछने लगे। तिस पर हनुमान ने बड़े आनन्द दायक शब्दों में कहा—"हाँ मैं देवी सीता को देख आया हूँ। सीता अशोक वाटिका में अनेक घोर राक्षसियों से रक्षित हैं तथा राम वियोग से पृथिवी पर सोती हैं। कभी २ किंचित् आहार करती हैं। शृङ्गार त्याग कर एक वेणी मात्र धारण किये और अति कृश शरीर हो रही हैं।"

सीता का समाचार सुनकर सब लोग अनेक ढङ्ग से प्रसन्नता प्रगट करते हुए हनुमान की बड़ाई करने लगे। अङ्गद ने भरी सभा में कहा, "कपिवर! सत्व तथा वीर्य में तुम्हारे समान कोई नहीं जो

तुम समुद्र पार जाकर कार्य कर यहाँ आये हो। वास्तव में तुम हम लोगों के जीवन के दाता हो। तुम्हारे प्रसाद से हम सब सिद्धार्थ हो राम से मिलेंगे। धन्य हैं तुम्हारी स्वामि भक्ति और धन्य है तुम्हारा वीर्य एवं धैर्य। बधाई हो तुम्हें, तुमने यशस्विनी राम-पत्नी का दर्शन किया है क्योंकि अब राम सीता वियोग के दुःख को त्याग देंगे। हे हनुमान ! अब हम समुद्र लंघन, लंका दर्शन और सीता तथा रावण के दर्शन का वृतान्त सुनना चाहते हैं सो तुम सुनाओ।"

जाम्बवान् ने भी इस अनुरोध को दुहराया। अङ्गद और जाम्बवान् की आज्ञा से यात्रा वृतान्त सुनाते हुए समुद्र का तैरना, महात्मा मैनाक का अतिथि होना, सुरसा समागम, राक्षसी लंका का पराजय, फिर लंका में घूमना बड़ी कठिनता से सीता का पता लगाना, रावण की क्रूरता, राक्षसियों का दुर्व्यवहार, सीता की दृढ़ता एवं राम-भक्ति, विभीषण पुत्री कला तथा त्रिजटा का सद्व्यवहार, अपना रामदूतत्व प्रकट करना, राम की मुद्रा देना, सीता से राम के लिए मणि लेना, अशोक वाटिका का नाश, राक्षसों से बाँधे हुए रावण के सम्मुख जाना, रावण की ओर से वध दण्ड, विभीषण द्वारा वध-निषेध, लांगूल-दहन एवं सीता का अपूर्व शील सुनाकर रावण के जीतने के अर्थ उद्योग करने के लिए हनुमान ने उन सबको बड़े प्रभाव शाली शब्दों में प्रेरणा की।

समस्त वानरों के सहित श्री हनुमान जी वहाँ से चलकर किष्किन्धा पहुंचे। वहाँ सुग्रीव के मधुवन में आनन्द पूर्वक सब वानरों ने अङ्गद की आज्ञा लेकर फलाहार किया। रक्षकों ने आकर वानर-राज सुग्रीव के पास इसकी शिकायत की, उस समय लक्ष्मण के पूछने पर सुग्रीव ने कहा—"भाई लक्ष्मण ! इन सब बातों से मुझे तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि हनुमान ने ही भगवती सीता का दर्शन किया है। वानर श्रेष्ठ हनुमान में कार्य सिद्धि करने की शक्ति, बुद्धि, उद्योग पराक्रम और शास्त्रीय ज्ञान सभी कुछ हैं।" इसके अतिरिक्त उन्होंने

और भी बहुत सी बातें ऐसी कहीं, जिनसे श्री हनुमान जी का प्रभाव व्यक्त होता है।

फिर सुग्रीव ने तुरन्त ही सब वानरों के साथ हनुमान जी को अपने पास बुला लिया और वे उनका कुशल-समाचार जान कर बड़े प्रसन्न हुए। सब मिलकर श्री राम जी के पास आये। उस समय रामचरित मानस में हनुमान जी के महत्व का वर्णन करते हुए जाम्बवान् ने कहा है—

नाथ पवन सुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥

इसके बाद हनुमान जी ने श्री राम के चरणों में प्रणाम किया और श्री राम ने हनुमान को हृदय से लगाया। तब हनुमान जी ने कहा – देवी सीता पातिव्रत्य के कठोर नियमों का पालन करती हुई शरीर से कुशल हैं, मैं उनके दर्शन कर आया हूँ।' हनुमान जी के ये अमृत के समान वचन सुनकर श्री राम और लक्ष्मण को बड़ा हर्ष हुआ। श्री राम के मन का भाव जानकर हनुमान जी ने उन्हें सीता खोज का सम्पूर्ण वृत्त कहा। प्रसन्न मन हनुमान बड़ी नम्रतासे कहने लगे —"महाराज! मैं विस्तार युक्त समुद्र को पार कर सीता जी को ढूंढता हुआ समुद्र के दक्षिण तीर पर महा नगरी लंका में गया, जहाँ का राजा रावण है। वहाँ मैंने सीता देवी का दर्शन किया। वह राक्षसियों से बार-२ झिड़कीं जाकर भी आप में सब प्रकार के मनोरथ रखती हैं। आपके विरह में उनकी दशा दीन, शरीर कृश, वस्त्र मलीन, क्लांत, वेणी एक जटावत् हो रही हैं तथा रावण के दुर्व्यवहार से वे दुःखमना प्राण त्यागने को उद्यत हैं।"

'बड़ी कठिनता से मैंने माँ सीता को अपने विषय में विश्वास दिलाया और आपकी सुग्रीव महाराज से मित्रता आदि का वृत्तान्त सुनाया जिसे सुनकर सीता बड़ी प्रसन्न हुई और अपने दुःखकी अवधि तथा आपके सेना सहित समुद्र पार आनेके विषय में पूछने लगीं, जिस पर मैंने सब उपाय बताकर सीता को सन्तोष एवं शान्ति रखने के लिए प्रार्थना की।"

चलते समय मुझे माँ सीता ने यह चूड़ामणि दी थी। उनके जीने का एक मास ही शेष है। मणि को पाकर श्री राम, लक्ष्मण सहित बहुत प्रसन्न होकर कहने लगे, "यदि सीता का जीवन एक मास और रह गया है तो बहुत थोड़ा समय शेष है। अब हम जब कि सीता के निवास स्थान का पता और मार्ग सुन चुके हैं, तब यहाँ क्षण भर भी नहीं रह सकते, इसलिए हमें भी वहाँ ले चलो और जो कुछ सीता ने तुमसे कहा है वह सब सुनाओ।"

राम के उत्तर में हनुमान ने कहा, "महाराज ! चलते समय मुझे सीता ने अपने दुःख को सुनाकर उससे मुक्त होने के उपायों का वर्णन करते हुए यह कहा कि किस प्रकार वानर और राम-लक्ष्मण इतने समुद्र को उलांघ कर यहाँ आयेंगे तथा मेरी राक्षसों के हाथ से मुक्ति होगी कि नहीं ? इस पर जब मैंने कहा कि राक्षस भवन से तुम्हारी मुक्ति मैं अभी करा देता हूँ तब सीता ने बड़े धैर्य और अभिमानसे कहा कि यह तो ठीक है, कि तुम मुझे सकुशल ले जा सकते हो, परन्तु इसमें मेरे महाबली पति रामचन्द्र की मान-हानि है। उनके लिये यही उचित है कि वह दल-बल सहित यहाँ आवें और रावण को मारकर मुझे ले जावें। दूसरे मैं पतिव्रता स्त्री हूँ और अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी पर पुरुष की देह को जीवन-सुख के लिए तो क्या मोक्ष लाभ के लिए भी स्पर्श नहीं कर सकती।" इस पर मैंने कहा "अच्छा देवि ! यदि तुम्हारी इच्छा है तो शीघ्र ही राम दल-बल सहित यहाँ आकर और राक्षसों को जीतकर तुमको सम्मान पूर्वक साथ ले जायेंगे और अति शीघ्र अयोध्या में तुम्हारे साथ राज तिलक धारण कर प्रजा का पालन करेंगे।

रामचरित मानस में सीता का सन्देश देते हुए हनुमान जी ने श्री सीता जी के प्रेम की बात इस प्रकार कही है—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥

: ३० :

हनुमान के प्रति राम का कृतज्ञ भाव

हनुमान से यह वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुए राम बोले—"हनूमान ! तुमने यह बड़ा भरी काम किया है जो दूसरे पुरुष के चिन्तन में भी नहीं आ सकता था। तुम्हारे बिना इतने विस्तार वाले समुद्र को तैरना ही कठिन था। जिस पर राक्षसों से सुरक्षित लंका में प्रवेश तथा वहां से अपना कार्य सिद्ध कर कुशलपूर्वक लौटना तुम्हारा ही काम है।

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्। यु० १।७

"महावीर ! वास्तव में तुमने एक आदर्श सेवक की भाँति सुग्रीव की आज्ञानुसार यह कार्य कर अपने को 'पुरुषोत्तम' * बनाया है। इतने बड़े सङ्कट-स्थान में पहुँचकर तुमने अपने आप को कृतकार्य कर सुग्रीव को भी प्रसन्न कर लिया। महात्मन् ! तुम्हारे इस कार्य से मैं, रघुवंश और महाबली लक्ष्मण सब ही उपकृत हुए हैं।"

हनुमस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते।
इत्यालिंग्य समाकृष्य गाढं वानरपुंगवम्॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठ परां प्रीतिमवाप सः।

"पवनसुत हनुमान् ! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओं से भी होना कठिन है। मैं इसके बदले में तुम्हारा क्या उपकार करूं, यह नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ।" यह कह

---

*यहां श्री राम द्वारा हनुमान के लिए 'पुरुषोत्तम' शब्द का प्रयोग ध्यान देने के योग्य है। क्या अब भी हनुमान बन्दर रहे ?

कर रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने हनुमान को खींचकर गाढ़ आलिंगन किया। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रेम में मग्न हो गये। हनुमान इन क्षणों में माता अंजना और पिता पवन की घोर तपस्या और गुरुदेव की अथक साधना का स्मरण कर श्रद्धानत हो गये।

पुरुष पुङ्गव राष्ट्रवीर हनुमान जी के बल, पराक्रम, कार्य-कौशल, साहस और पवित्र प्रेम का इस प्रकरण में सभी रामायणों में बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

× × × ×

: ३१ :

श्री राम का असमंजस

सीता जीवित हैं, यह जानने और लंका गढ़ के विषय में महावीर से अन्य जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् लंका को किस प्रकार विजय किया जावे, इस विचार ने कुछ क्षणों के लिए श्री राम को चिन्तातुर सा बना दिया। उन्होंने एक निश्चित योजना बनाने के लिए महावीर हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवान्, नल-नील आदि प्रमुख वीरों को अपने समीप बुलाया और लक्ष्मण सहित विचार करने लगे। सीता की खोज के लिए एक बार पुनः सभी वानर वीरों और मुख्यतया हनुमान का धन्यवाद करते हुए वे बोले—'वीरो! सामान्य शत्रु को भी कभी छोटा नहीं मानना चाहिए जिसमें अपना शत्रु तो बड़ा प्रबल है। बीच में ठाठें मारता विशाल समुद्र भी है। यों आप लोगों के प्रबल और साहाय्य के प्रति मैं पूर्ण विश्वस्त हूँ। पर यदि आप लोग उचित और आवश्यक समझें तो प्रिय भरत को सूचित करने पर अयोध्या के आर्य-राष्ट्र का सम्पूर्ण सैन्य दल भी हमें प्राप्त हो सकेगा, यद्यपि मैं स्वयं अयोध्या से सैन्य सहायता लेने में अधिक रुचि नहीं रखता। आप लोग इस विषयक मेरी द्विधा दूर करें।"

श्री राम के यह शब्द सुनते ही महावीर का सोया हुआ स्वाभिमान जैसे जाग उठा। अपनी संक्रान्ति-सेना (वानर युवक दल) का स्मरण कर वे बड़ी निश्चयात्मक किन्तु विनम्र वाणी में बोले—"महाराज ! आपको इस प्रकार चिन्तित होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। महाराज ! सुग्रीव की इस सेना के अतिरिक्त सम्पूर्ण वानर राष्ट्र की युवा शक्ति शत्रु से युद्ध करेगी। इस शक्ति का विराट् स्वरूप आपको आज से तीसरे दिन ही ज्ञात हो जायगा। आप सब प्रकार के असमंजस का त्याग करें। शत्रु दर्प दलन में हम सर्वथा समर्थ हैं। अति शीघ्र ही हम लंका विजय कर माता सीता को अपने मध्य में देख सकेंगे। ईश्वर हमारा सहाय करेंगे। अयोध्या से सैन्य सहयोग लेने की तनिक भी आवश्यकता हमें नहीं है।"

पुनः सुग्रीव ने श्री राम को आश्वस्त और प्रोत्साहित करते हुए कहा—

सन्तापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव।
प्रपराभुपलाब्धायाँ ज्ञाते च निलये रिपोः। यु० २।६.
मतिमांशास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघवः।
त्यजेमाँ प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषिणीम्। यु० २।४
समुद्रं लंघयित्वा तु महानक्रसमाकुलम्।
लंकामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम्। यु० २।५
निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति। यु० २।३

"हे राम ! साधारण पुरुषों की भाँति आप क्यों चिन्तित से हैं अब सन्ताप का कौन सा स्थान है, जब कि शत्रु के नगर और उसमें पहुँचने का मार्ग जान लिया है ? आप बुद्धिमान्, शास्त्रवेत्ता, विचारशील और पण्डित हैं अतएव इस प्राकृत बुद्धि को त्याग दें। निश्चय रखो कि हम सब समुद्र पार कर लंका पर आक्रमण करेंगे तथा आपके शत्रु रावण और राक्षसों को नष्ट कर देंगे। यदि उत्साह ही

छोड़ दिया तो सब व्यर्थ हो जायगा। और अनेक विपदायें आ घेरेंगी।"

"जिस प्रकार पाप कर्मी रावण को मारकर सीता को लंका से लाए वैसा यत्न करो। हे राघव ! जिस प्रकार हम समुद्र पर पुल बाँध सकें, और लंका में चले जायें ऐसा यत्न करो और प्रत्येक प्रकार के शोक को छोड़ दो, क्योंकि शीघ्र ही हमारी वानर सेना सागर को तैरकर राक्षसों का नाश करेगी और हम सीता देवी के दर्शन करेंगे। अधिक क्या कहूं, सब लक्षण ऐसे प्रतीत होते हैं कि इस कार्य में निश्चय ही आपकी विजय होगी। आपको केवल धैर्य धारण कर उत्साह रखना चाहिए।"

"हे राम ! ऋषि अगस्त्य प्रेरित हनुमान के एकाकी प्रयास से वानर राष्ट्र एक महाशक्ति के रूप में खड़ा हो सका है। असुर राष्ट्र से मोर्चा लेने में वह पूर्ण समर्थ है। अतः आप पूर्ण निश्चिन्त रहिये।"

: ३१ :

हनुमान का विराट् रूप

उसी समय से युवक वानर दल के वीर सैनिक सुग्रीव के सैनिक शिविर में सम्मिलित होने लगे। चतुर्दिक महावीर हनुमान का जय-जयकार सुनाई पड़ रहा था। ठीक तीसरे दिन दिग्-दिगन्त तक छाई हुई वानर सेना के समक्ष महात्मा राम का वंश परिचय, महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ-रक्षा के प्रकरण में ताड़का-सुबाहु वध, सीता स्वयंवर में श्री राम का अपूर्व पौरुष, पिता की आज्ञा पालनार्थ वन-गमन, ऋषि-मुनि कष्ट निवारणार्थं राम-प्रतिज्ञा, सीता-हरण, खर-दूषण सहित १४ सहस्र सैन्य दल वध, बाली वध, और सीता-खोज वृत्त बड़ी मार्मिक और रोमांचकारी शैली में प्रस्तुत करते हुए क्रान्ति दूत महावीर कह रहे थे—"वीरो ! इस सम्पूर्ण कहानी से यह सुप्रकट है कि श्री राम-लक्ष्मण स्वयं ही असुरों के संहार में समर्थ हैं। मानो

उनका जन्म और जीवन ही असुर-विनाश के लिए है। फिर वे चाहें तो उनके संकेत मात्र पर श्री भरत के नेतृत्व में सम्पूर्ण आर्य राष्ट्र का सैन्य बल यहाँ उपस्थित हो सकता है। पर क्या यह उचित होगा कि हमारी मातृभूमि पर, वानर राष्ट्र के आंचल में किये गये सीता-हरण के इस घोरतम अनर्थ के प्रसङ्ग मे हम सब मूक साक्षी बने। रहें ? और क्या आप चाहेंगे कि इस प्रकार भावी पीढियां हम लोगों को धिक्कारती रहें ?"

"चारों ओर से ध्वनि आई—नहीं, नहीं।"

"यदि नहीं, तो वीरो ! उठ खड़े हो, संभालो अपने अस्त्र-शस्त्रों को, चढ़ जाओ लंका के कंगूरों पर, ढहा दो पापी की स्वर्ण लंका, को फहरा दो लंका पर वैदिक संस्कृति की पवित्र ध्वजा को। याद रखो, वीरो ! माता सीता सम्पूर्ण मातृ-शक्ति को प्रतिनिधि रूपा हैं। आज तक जिन शत-सहस्र देवियों का सतीत्व पापी रावण के हाथों मर्दित किया गया है, उन सबका चीत्कार और हाहाकार, जिन हजारों ऋषि-मुनियों का रक्त बहाकर दुरात्मा रावण का अहं तृप्त होता रहा है, उन सबकी आत्माओं का समवेत पाप ही मानो पापी रावण का काल बनकर माँ सीता के रूप में मूर्तिमान हुआ है।

वीरो ! यों जिस घड़ी की हम सबको प्रतीक्षा थी जिसके लिए आपने अपने उभरते हुए यौवन को राष्ट्रवेदी पर बलिदान करने की प्रतिज्ञायें की थीं, वह घड़ी अब आ पहुँची है। वीरो ! आप भूले नहीं होंगे, आपके दल का जन्म तो हुआ ही है आसुरी सभ्यता पर वैदिक संस्कृति की पावन पताका लहराने के लिए। राष्ट्रोद्धार और माँ मानवता की सेवा का यह कार्य आपका अपना कार्य है। यह तो ईश कृपा और हमारे ऋषियों की तपस्या का ही परिणाम है जो प्रथम महाराज सुग्रीव का आश्रय और अब आर्यकुल भूषण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का सबल और सफल नेतृत्व हमें मिला। इसे एक ईश्वर प्रदत्त सुयोग मानकर आओ हम कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ चलें।"

और तभी देवी पद्मरागा के नायकत्व में सभा-मण्डप में प्रवेश करती कई बहिनों का कण्ठ एक प्रेरक गीत के रूप में फूट पड़ा।

मरण पर्व आ पहुँचा आज।
पुण्य पर्व आ पहुँचा आज, राष्ट्र पर्व आ पहुँचा आज।
बलिवेदी कर रही प्रतीक्षा वीरो ! सजो युद्ध का साज ॥१॥
कितनी कुल ललनायें लूटीं, कितने ऋषि गत प्राण कर दिये।
उन सबकी प्रतिनिधि रूप माँ सिय की रखो वीरवर लाज ॥२॥
ओ माँ बहिनो ! बहू-बेटियो ! लाज रखो माता की आज।
दे दो अपनी झोली के धन, दे दो अपने सर के ताज ॥३॥
इसी दिवस के लिए वीर हनुमान बने थे ब्रह्मचारी।
पापीं की लंका चल फूकें, गूँजे रामचन्द्र जय-गाज ॥४॥
मरण पर्व आ पहुँचा आज।

आह्वान गीत की समाप्ति पर वानर वीरांगना दल ने तुरन्त ही एक दूसरा 'प्रतिज्ञा गीत' आरम्भ किया। महावीर का संकेत मिलते ही 'संक्रान्ति दल' के सैनिक उठ खड़े हुए और उन्होंने भुजायें उठा-उठाकर गीत को दुहराया—

हम माँ सीता को लायेंगे। हम....
हम आर्यवर्त्त की बगिया में नूतन वसन्त सरसायेंगे॥
सत्य की विजय होगी निश्चय, पापों की लंका छार छार
चिन्ता त्यागो हे आर्य राम ! हम विजय वरण कर आयेंगे ॥१॥
धरा धसक जायेगी उस क्षण; तारे टूट पड़ेंगे उस क्षण
जब हम वानर वीर सभी मिलकर हुंकार लगायेंगे ॥२॥
वर वीर व्रती हनुमान हमारे नेता और प्रणेता भी;
उनके संकेतों पर हम सब हँस-हँस बलिदान चढ़ायेंगे ॥३॥
हम रावण दल संहार करें, श्री रामचन्द्र जयकार करें।
फिर एक बार आसेतु हिमाचल वैदिक ध्वज लहरायेंगे ॥४॥

करते हैं आज प्रतिज्ञा हम हे राम ! आपके चरणों में।
राजन्य ! आपकी कीर्ति-पताका युग-युग तक फहरायेंगे ।।५।।
हम माँ सीता को लायेंगे

गीत के समाप्त होते-होते दिशायें गूँज उठीं -

राजा रामचन्द्र की जय ! महाराज सुग्रीव की जय ! युवक नेता वज्रांगी हनुमान की जय ! वैदिक संस्कृति अमर है ! माँ मानवता अमर है ! संसार के श्रेष्ठ पुरुषो एक हो ! संस्कृति चिरजीवी हो !

—और तभी पद्मरागा ने बढ़कर भ्राता हनुमान का अभिषेक किया। देखते २ सभी वीर पंक्तिबद्ध हो गये। आगत बहिनों ने वीरों का अभिषेक कर प्राण देकर भी माँ सीता को बन्धन मुक्त कराने की शपथ दिला रही थीं। एक अपूर्व दृश्य था। श्री राम भाव विभोर हो उठे। अंजनी कुमार का यह विराट् रूप देख कर श्री राम ने उन्हें अङ्क में भर लिया। वे इतना ही कह सके - "तात ! राष्ट्रोद्धार के लिए तुम्हारी और तुम्हारे साथ ही महर्षि अगस्त्य, महाराज पवन और माँ अंजना की साध सबसे अनूठी है। सबसे महान् !" श्री राम ने हनुमान की धर्म-बहिन पद्मरागा का परिचय पाकर हार्दिक प्रसन्नता प्रकाशित करते हुए उन्हें तथा उनके वीरांगना दल के साथ ही समस्त वानर वीरों के प्रति उनके उत्साह और कृतित्व के लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

: ३३ :

हनुमान की नीतिमत्ता

अब श्री राम ने सर्वथा निश्चिन्त भाव से सुग्रीव को युद्ध के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दी ! सम्पूर्ण सैन्य दल जय घोषों से आकाश गुँजाता समुद्र तट पर आ पहुंचा। श्री राम, लक्ष्मण, सुग्रीव

एवं हनुमान आदि के सहित समुद्र तरने के उपायों पर विचार कर रहे थे कि उन्हें रावण-भ्राता विभीषण के शरण में आने का सन्देश मिला। इस प्रसंग को लेकर सुग्रीव तथा अन्य सभासदों ने विभीषण के सम्बन्ध में अनेक सन्देह युक्त विचार प्रकट करते हुए उसे न अपनाने का प्रस्ताव किया। तब श्री राम की आज्ञा से नीति-धुरीण संस्कार-सम्पन्न हनुमान (जो स्वयं ही सीता-खोज के समय ही लंका में 'फूट की आग' लगाकर आये थे) बोले—"राघवेन्द्र! मैं आपके सामने कहने के तो योग्य नहीं, परन्तु मन्त्री वर्ग की कही एक दो बातों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। वह यह कि एक बार ही किसी पर-दल से आये हुए पुरुष के विरुद्ध कोई दोषारोपण करना उचित नहीं है, जो बातें इनके विषय में कही जाती हैं, उनका कोई स्थान ही नहीं हैं। सबसे बड़ी शंका कि विभीषण का राम की शरण में आने का यह कोई देश और काल नहीं वह ठीक नहीं है, क्योंकि एक दुःखी पुरुष के लिए देश-काल का कोई विचार नहीं होता।

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमश्च तथा त्वयि।
युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः। १७।५८
अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन् पृच्छ्यतामिति। १७।५६
अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै।
अंतरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम्। १७।६१
न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः। १७।६२
उद्योगं तव संप्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
बालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्। १६।६६
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः। १७।६७

"रावण की सीता हरणरूपी दुरात्मा और आपके बाली-वध आदि विक्रम को देखकर यह आपकी शरण में आया है। अतएव यह उसकी बुद्धि का उत्तम प्रमाण है।"

"यदि आपको विशेष जानना हो, तो आप अनजाने पुरुषों से उसका भेद लें क्योंकि बातचीत से भाव प्रकट हो जाते हैं। चाहे कोई कितना ही विद्वान् हो पर उसकी शक्ति से बाहर है कि वह बुद्धिमान के सामने अपने भावों तथा अपने अन्दर के विचारों को प्रकट न होने दे, और बातचीत करता रहे। श्रीमान्! इसके बोलते हुए इसकी वाणी से किंचित् भी दुष्टता प्रतीत नहीं होती और इसका मुख प्रसन्न है इसलिए मुझे तो इस पर कोई सन्देह नहीं है। इसके आचार, व्यवहार सरल व स्पष्ट हैं इसलिए मेरा भी यही मत है कि आपके उद्योग रावण के पापाचार बाली के वध सुग्रीव के अभिषेक आदिको सुनकर राज्य प्राप्ति के विचार से यह आपकी शरण में आया है।"

हनुमान जी की सम्मति सुनकर प्रसन्न हुए राम बोले—"मुझे भी कुछ कहना है। आप लोग कृपा कर सुनें, वह यह है कि—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्मिन् स्यात्सतामेतद्विगर्हितम् ॥८१॥

"मित्र भाव से आये हुए को मैं कभी नहीं त्याग सकता। यद्यपि इसमें नैतिक दोष हों, पर सत्पुरुषों के लिए बड़ी निन्दा का स्थान है कि वे शरण आये मित्र को ग्रहण न करें।"

: ३४ :

युद्ध भूमि में

नल और नील जैसे कुशल इन्जीनियरों तथा प्राणों पर खेलने वाले महा पराक्रमी वानरों-वीरों के साहस और सहयोग से तथा सागर नामक वृद्ध एवं अनुभवी महात्मा के मार्ग दर्शन में समुद्र पर सेतु बाँध राम-दल ने लंका में प्रवेश किया। युवराज अंगद को एक बार पुनः रावण को कर्त्तव्य बोध कराने के लिए भेजा गया। महावीर हनुमान के पूर्व पराक्रम से चिन्ताग्नि में दग्ध हो रहे लंका के नर-नारी अंगद को भी हनुमान समझ "हनुमान फिर आ गया,

महावीर फिर आ गया' ऐसा उच्चालाप कर भयांत हो इधर-उधर भागने लगे।

अंगद के सिखावन को भौतिक ऐश्वर्यों के मद में डूबा रावण कहाँ और क्यों मानता ? अन्ततः एकान्त भोगवादी राक्षसी सभ्यता का सर्वनाशकारी महा-युद्ध हुआ। × × ×

वाल्मीकीय रामायण के युद्ध काण्ड में श्री हनुमान जी के प्रभाव का बड़ा सुन्दर वर्णन है, यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है।

एक दिन भयानक युद्ध में रावण के प्रधान-प्रधान सेनापति खेत रहे, राक्षस लोग हताश हो गये। पुत्र और भाइयों के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण को बड़ी चिन्ता हुई। यह देखकर मेघनाद को बड़ा क्रोध आया। वह पिता के सामने अपने बल-पौरुष का वर्णन करके उसे धैर्य देकर भयानक युद्ध करने के लिए युद्ध क्षेत्र में आया। वहाँ पहुँचकर उसने बड़ा घमासान युद्ध किया तथा बहुत से वानरों को प्राणहीन कर दिया। उसके ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से श्रीराम और लक्ष्मण भी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। बचे हुए प्रधान-प्रधान रीछ और वानर चिन्तामग्न हो गये। तब विभीषण ने सबको धैर्य दिया और वे हनुमान को साथ लेकर जहाँ जाम्बवान् पड़ा था वहाँ गये। वहाँ जाकर विभीषण ने जाम्बवान् का हाल पूछा, तब जाम्बवान् अपनी पीड़ा का वर्णन करते हुए कहने लगे—कि 'मैं तुम्हें केवल आवाज से ही पहचान सका हूँ देखने की शक्ति मुझमें नहीं है। तुम सबसे पहले मुझे यह बताओ कि वानर श्रेष्ठ हनुमान के प्राण बचे हैं या नहीं।' इस पर विभीषण ने कहा—'ऋक्षराज ! आपने श्री राम और लक्ष्मण को छोड़कर पहले केवल हनुमान जी की कुशल कैसे पूछी ? राजा सुग्रीव, अंगद तथा श्री राम और लक्ष्मण पर भी आपने उतना स्नेह प्रकट नहीं किया जितना गाढ़ा प्रेम आपका पवन-कुमार के प्रति लक्षित हो रहा है। इसका क्या कारण है ?'

तब जाम्ववन् बोले—

श्रृणु नैऋतशार्दूल यस्मापृच्छामि मारुतिम् ।।
अस्मिंजीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ।
हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ।।
(युद्ध० ७४ । ११-२२)

'राक्षस राज ! सुनो, मैं हनुमान के लिए इसलिए पूछ रहा हूँ कि यदि इस समय वीरवर हनुमान जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जी सकती है और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हम जीते हुए भी मृतक तुल्य ही हैं।

इसके बाद श्री हनुमान जी ने उनको प्रणाम किया। हनुमान की आवाज सुनकर जाम्बवान् में जैसे नया जीवन आ गया।

× × × ×

: ३५ :

जब हनुमान संजीवनी लाये

पश्चात् जाम्बवान्, विभीषण, हनुमान और कतिपय वानरों के साथ वानर-सेना तथा श्री राम-लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने का उपाय सोचने लगे।

अपनी २ बारी से सम्मति देते हुए विभीषण ने कहा—

विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ राम लक्ष्मणौ । ७४।२८
हिमवंतं नगश्रेष्ठ हनुमन् ! गन्तुमर्हसि । ७४।२९
सर्वौषधियुतं वीर ! द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् । ७४।३१
मृतसंजीवनी चैव विशल्यकरणीमपि ।
सुवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधीम् । ७४।३३
ताः सर्वा हनुमन् ! गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन्प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज । ७४।३४

ऋषभ तथा हिमवान् पर्वत पर बहुत सी उपयोगी औषधियां

हैं उनमें से ॐ मृत संजीवनी + विशल्यकरणी ● सुवर्णकरणी और ★ सन्धानी औषधि हैं। इन सबको वीर हनुमान जानते हैं और यही शीघ्र ला भी सकते हैं। अत: इनसे ही उनको लाने की प्रार्थना करनी चाहिए तथा उन औषधियों से वानरों की मूर्छा, शस्त्र-विष और अस्थिभङ्ग आदि दूर करना चाहिए। विभीषण का वचन सुनकर जाम्बवान आदि वृद्धों ने हनुमान को औषधि लाने के लिए कहा।

जाम्बवान् आदि की आज्ञा मानकर विद्वान् हनुमान विमान द्वारा उस पर्वत पर गए और वहाँ से वे औषधियें लेकर शीघ्र ही वानर सेना में आ गये जिसे देख सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। हनुमान ने सबको यथा योग्य प्रणाम किया और उनसे आशीर्वादादि प्राप्त किया। तदन्तर वह औषधियें राम-लक्ष्मण और अन्यान्य वानरों को सुँघाई तथा लगाई गईं तो झट-पट राम-लक्ष्मण तथा अन्य सब वानर वीर सचेत और निरोग हो गए तथा अनेकों वानर तो तभी युद्ध के लिए भी तैयार हो गए।

: ३६ :

हनुमान द्वारा इन्द्रजित् को धिक्कार

इस युद्ध में जब राक्षसों के बड़े-बड़े योधा मारे गए, तब रावण

ॐ मृत संजीवनी – मूर्छितों को सचेत करने वाली।

+ विशल्यकरणी—अस्त्र-शस्त्र आदि के विष को निकालने वाली।

● सुवर्णकरणी—रोगी पुरुषों की देह को सुवर्ण समान उज्जवल करने वाली।

★ सन्धानी—कटे हुए अङ्ग हड्डी अथवा शिर, धड़ को जोड़ देने वाली।

नोट—लोक में यह कथा निराधार ही प्रसिद्ध है, कि हनुमान अयोध्या मार्ग से पर्वत सहित बूटी लेकर आये तब भरत ने बाण मारा और राम के विषय में वार्ता की। क्या भरत समाचार पाकर मौन बैठे रहते ?

के पुत्र इन्द्रजित् ने शत्रु-दल को निरुत्साहित करने के लिए एक राक्षसी माया रची। एक माया की सीता बनाकर वह रणभूमि में ले आया और वानर-वीर हनुमान के सामने वध करने लगा, उसका तात्पर्य यह था कि हनुमान और राम आदि सब पीछे हट जायें कि अब सब युद्ध व्यर्थ है क्योंकि जिसके लिए युद्ध था वह सीता ही नष्ट हो गई है। हुआ भी ऐसा ही। जब वह सीता को केशों से पकड़ कर रण क्षेत्र में ले कर आया तब हनुमान जी बोले—"हे अनार्य दुर्वृत्त ! धिक्कार है तुमको जो निरपराध, विपदग्रस्त, गृह, राज्य तथा पति-हस्त से वियुक्त सीता देवी को निर्दय होकर मारना चाहता है। अरे नीच ! क्या तुझे इस घृणा के योग्य कर्म से घृणा नहीं होती। पापी ! स्मरण रख कि यदि तू इस कर्म से न हटेगा तो शीघ्र ही तेरा नाश होगा।"*

परन्तु यह सब कुछ न सुनते हुए राक्षस ने यह कहकर कि "हनुमान ! सुग्रीव राम और तुम जिसके लिए आए हो उस सीता को आज तुम्हारे सामने वध करता हूं।" तीक्ष्ण खड्ग से यज्ञोपवीत मार्ग अर्थात् हृदय के स्थान से माया (वैज्ञानिक कौशल) की बनी सीता को काट डाला जिसे देख व सुन कर राक्षस-दल में हर्षनाद और वानर दल में शोक छा गया। किन्तु शीघ्र ही विभीषण द्वारा रहस्योद्घाटन किये जाने पर सभी को बड़ा सन्तोष हुआ।

---

* धिक् त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशो।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणास्ते नास्ति निर्घृण। ८१।१९।
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली।
किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय। ८१।२०।

: ३७ :

हनुमान जी की युद्ध कुशलता

(सुप्रबन्ध के साथ संनिवर्तन । Orderly Retaeat)

नकली (मायामयी) सीता को मार । के उक्त प्रसंग में ही इन्द्रजित् के सामने हनुमान जी का शौर्य उस समय न्यून पड़ने लगा । इन्द्रजित् का जोर बढ़ रहा था हनुमान जी की फौज अब विपक्षी के फन्दे में लगभग फँस चुकी थी । ऐसी अवस्था में युद्ध जारी रखने से वृथा सैन्य नाश होता है और इस तरह वृथा सैन्य नाश होने देना उचित नहीं है, यह सोचकर हनुमान जी ने अपनी सेना में से कुछ चुने हुए वीरों को साथ लेकर इन्द्रजित् की सेना को आगे बढ़ने से रोक रक्खा और अपनी आड़ से (under-Cover) शेष सब वानर सेना एक भी वानर न गंवाकर युद्ध स्थल से पीछे निकलवा कर वचा ली । इस प्रसङ्ग का वर्णन महर्षि वाल्मीकि जी ने इस भांति किया है—

> सस्कन्धविटपैः शैलैः शिलाभिश्च महाबलः ।
> हनुमान कदनं चक्रे रक्षसां भीम कर्मणाम् ।१८।।
> सन्निवार्य परानीकं अब्रवीत् तान् वनौकसः ।
> हनुमान सन्निवर्तध्वं न नः साध्यं इदं बलम ।।१६।।
> यन्निमित्तं हि युद्ध्यामो हता सा जनकात्मजा ।
> इमं अर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ।
> तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्याम्यहे वयम् ।।२१।।
> इत्युक्त्वा वानर श्रेष्ठो वारयन् सर्व वानरान् ।
> शनैः शनैः असंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ।।२२।।

(युद्धकांड, सर्ग ८२)

अर्थात्—बड़े-बड़े शैल खण्ड और वृक्षों की वर्षा करके हनुमान जी ने उन भयंकर युद्ध करने वाले राक्षसों का संहार करना शुरू किया। परन्तु राक्षसों का वेग बढ़ता जा रहा है और अपनी सेना राक्षसों के चंगुल में फंस रही है, यह देखकर ऐसीं विषमावस्था में, वृथाभिमान में पड़कर तथा अप्रासंगिक शौर्य दिखाकर सेना को व्यर्थ कटवा देना अनुचित है, यह सोचकर हनुमान जी ने उस सेना से पर्याप्त संख्या में चुने हुए वीरों का एक दल अपने साथ लेकर इन्द्रजित् का मुकाबला किया, और उसकी आगे बढ़ती हुई सेना को रोककर, अपनी शेष सेना को आज्ञा दी कि, "आज शत्रु-सेना से जीतना कठिन है, इसलिए सन्निवर्तध्वं' पीछे को लौट चलो। (इस आज्ञा को ही Order for Retreat कहते हैं।) जिन सीता जी के हेतु हम अपने प्राणों की भी परवा न करके युद्ध कर रहे हैं, उन सीता जी का तो वध इन्द्रजीत ने कर ही दिया। अतः यह वृतान्त श्री रामचन्द्र जी और महाराज सुग्रीव को सुनाकर उनकी जो आज्ञा होगी, उसी के अनुसार वर्तेंगे। (श्लोक १०-१९)" यह कहकर हनुमान जी ने वानर सेना को पीछे जाने की आज्ञा दी और आप भी शनैः शनैः (gradually) असंत्रस्तः यानी शान्त चित्त से (undisturbed), यानि अपने प्रबन्ध में किसी प्रकार की गड़बड़ या अव्यवस्था न होने देकर, 'सबलः'—(with the army) सेना को साथ लेकर, 'संन्यवर्तत' (retreated) वापिस लौट गये। इस प्रकार के सैन्य संचालन को—(Orderly retreat) कहते हैं।

अब यहां पर यह सोचना चाहिए कि, युद्ध में जीत होने पर विपक्षी की हारी हुई सेना पर दबाव डालना कोई बड़ी बात नहीं है; किन्तु जब लडाई पलटा खा जाती है और शत्रु-सेना पर विजय पाने के बदले अपनी ही सेना हार कर विपक्षी के चंगुल में फंस जाने की वारी आती है, तो ऐसे अवसर पर अपनी सेना को विपक्षी के फन्दे से बचाकर निकाल ले जाने में ही सेनापति की युद्ध कुशलता का

परिचय मिलता है। यह कुशलता हनुमान जी में थी; इसका प्रमाण भी पूर्वोक्त श्लोकों में पाया जाता है।

यह एक लोकोक्ति है कि—

"मंत्रिणां भिन्नसन्धाने भिषजां सन्निपातिके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा स्वस्थे को वा न पंडितः॥"

इसका भावार्थ यह है कि, जब तक सब काम निर्विघ्न चल रहे हैं, और उन में किसी प्रकार की बाधा बीच में नहीं आती, तब तक सभी बुद्धिमान होते हैं, परन्तु कोई काम बिगड़ जाने पर उसके बनाने में ही विशेष बुद्धिमानी होती है। राज-काज बिगड़ने पर उसको संभाल लेने में मंत्री की बुद्धिमत्ता, व्याधि प्रकोप होने पर उसको संभाल कर रोगी के प्राण बचाने में वैद्य की कुशलता प्रतीत होती है हनुमान जी समय पर प्रसंगावधान (Presence of mind) रख कर इन्द्रजित् की मार से अपनी सेना को बचाकर उसको बेदाग निकाल ले गये, इसी में उनके सेनापतित्व का आत्यन्तिक कौशल्य दिखाई देता है।

: ३८ :

रावण पर मुष्टि प्रहार : श्री राम के भ्रातृ-स्नेह की रक्षा

जब रावण द्वारा छोडी हुई अमोघ शक्ति श्री लक्ष्मण जी ने विभीषण जी की रक्षा के लिए अपने ऊपर ले ली और वे मूर्छित हो गये, तब रावण श्री लक्ष्मण के पास जाकर उन्हें उठाने लगा।

अध्यात्म रामायण में लिखा है -

ग्रहीतु कामं सौमित्रं रावणं वीक्ष्य मारुतिः॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि॥

(यु० ६। १२-१३)

'उस समय हनुमान जी ने देखा कि रावण लक्ष्मण को उठाकर

ले जाना चाहता है तो वे कुपित हो गये और अपनी वज्र तुल्य मुट्ठी से उसकी छाती पर प्रहार किया। उस मुष्टि प्रहार से रावण घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा।" इधर हनुमान जी लक्ष्मण को उठाकर भगवान श्री राम के पास ले गये।

इस समय भी हनुमान जी समुद्र स्थित द्रोण पर्वत पर औषधि लाने के लिए गये। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए सभी रामायणों में हनुमान जी का अद्भुत बल, पौरुष, बुद्धि-कौशल और प्रभाव दिखाया गया है।

भगवान् राम जब अनुज लक्ष्मण को मूर्छित अवस्था में (मृतवत्) देख बहुविधि विलाप करते हुए कह रहे थे—"न मालूम मैंने पूर्व जन्म में क्या दुष्कर्म किया है, जिसके फलस्वरूप मेरा धार्मिक भ्राता मेरे सामने ही मर रहा है ?"* तभी महावीर हनुमान औषधि लेकर आ पहुँचे। गोस्वामी तुलसीदास ने इस अवसर का बड़ा सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है

प्रभु विलाप सुनि कान विकल भये वानर निकर,
आइ गये हनुमान जिमि करुणा मंह वीर रस।

सुषेण ने अब संजीवनी सुंघाकर तथा विशल्यकरणी से घावों को अच्छा कर वीर व्रती यतिवर लक्ष्मण को स्वस्थ कर दिया। श्री राम ने अपने भ्रातृ-स्नेह की रक्षा करने वाले महावीर हनुमान का स्वयं को ऋणी मानते हुए बार २ हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

---

* किं मया दुष्कृतं कर्म कृत मन्यत्र जन्मनि।
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः॥
(यु० काण्ड १०१। १६)

श्री राम यहाँ स्वयं अपना पुनर्जन्म मानते हुए कर्म फल के बन्धन को स्वीकार कर रहे हैं।। वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक अवतारवाद पर वज्र-प्रहार तुल्य है।

: ३९ :

राम-सीता मिलाप में हनुमान की भूमिका

रावण-वध और उसके अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् श्रीराम ने अपने सबसे बड़े सहायक राष्ट्रोद्धार-व्रती महावीर हनुमान को बुलाकर आज्ञा दी—"सौम्य! अब और सब काम तो हो गया है परन्तु जिसके लिए यह सब कुछ हुआ है, अब उस सीता की भी सुधि लेनी चाहिए। अत:—

> अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
> प्रविश्य नगरीं लंका कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्। यु० ११२।२४
> वैदेह्यै मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
> आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ! रावणं च हतं रणे। यु० ११२।२५

महाराज विभीषण की आज्ञा लेकर लंका में जाओ और जानकी को मेरा कुशल समाचार दो तथा जानकी का मुझे दो। सीता से यह सुखदायक समाचार भी कह देना कि रावण-युद्ध में मारा गया है।"

श्री राम की आज्ञा पाकर हनुमान लंका में गए और वहां से महाराज विभीषण की आज्ञा से सीता देवी के पास जाकर बोले—

> विभीषण सहायेन रामेण हरिभि: सह:।
> निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान्। यु० ११३।८
> प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये।
> तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महान्रामेण संयुगे। यु० ११३।९
> लब्धोऽयं विजय: सीते स्वस्था भव गतज्वरा।
> रावणश्च हत: शत्रुर्लंका चैव वशीकृता। यु० ११३।१०

"वैदेही! राम, सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ कुशल पूर्वक हैं और अब वह शत्रुओं को मारकर कृतकार्य हुए हैं।

"देवि ! विभीषण, सुग्रीवादि वानर और लक्ष्मण की सहायता से उन्होने रावण को भी मार लिया है। धर्मज्ञे ! यह भारी विजय राम को तुम्हारे ही प्रभाव से हुई है, इसलिए निश्चिन्त होकर पूर्ववत् आनन्दित हो, क्योंकि रावण मारा गया और लंका अपने वश में हो गई।

हनुमान के मुख से इस परमानन्द देने वाले वचन को श्रवण कर सीता आनन्द से कुछ काल तक तो निर्वाक् हो गईं फिर बोलीं—"हनुमान ! इस अति प्रिय वचन के सुनाने के बदले में मैं तुमको क्या देकर अनृणी हो सकती हूँ, यह मैं नहीं समझती। यदि सुवर्ण, धन, बहुविधि रत्न वा त्रिलोक का राज्य भी मैं तुम्हें इसके बदले में दे सकूँ तो थोड़ा है।"

हनुमान ने कहा—सीते ! तुम जैसी पतिव्रताओं से ऐसे ही पति प्रेम की आशा हो सकती है।"

इस पर सीता ने फिर हनुमान के धर्म, विद्या, बुद्धि और गुणों की प्रशंसा की, तब प्रसन्न होकर हनुमान बोले—

"देवि ! मैंने सुना है, यह राक्षसियां तुम्हें बहुत दुःख देती रही हैं। यदि आज्ञा दो तो मैं इन्हें मार दूँ।"

इस बात पर सीता बहुत देर तक विचारती रहीं और फिर बोलीं, "वीर ! राजा की आज्ञा से बलात् किसी काम पर लगाई हुई दासियों पर क्या कोप करना, क्योंकि यह पराधीन थीं, जो तुम मेरे दुःख का विचार करते हो, सो—

भाग्य वैषम्यदोषेण पुरस्ताद् दुष्कृतेन च।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते। ११३।३९-४०

यह तो मेरे भाग्य के उलटा होने के कारण ही है। किसी पूर्व जन्म के दुष्ट का फल भोगना आवश्यक है।"

सीता के इस कथन को सुनकर हनुमान ने कहा—"क्यों न आपके ऐसे भाव हों, जबकि आप राम की धर्मपत्नी हैं। अब आप कृपा कर कहिए कि आपकी ओर से मैं राम को क्या सन्देश दूँ ?"

तब सीता ने कहा, मैं केवल भक्तवत्सल अपने पति को देखना चाहती हूँ। सीता के सन्देश को लेकर हनुमान राम के समीप आये और सीता का सन्देश सुनाया। इस पर राम ने विभीषण को वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत कर सीता को लाने के लिए कहा।

सीता से कुशल क्षेम पूछने के अनन्तर राम ने अपने और हनुमान, सुग्रीव विभीषण आदि मित्रों के बल पौरुष तथा विजय का वर्णन किया।

: ३० :

अयोध्या में हनुमान

विभीषण द्वारा दिए गए पुष्पक-विमान पर सीता और लक्ष्मण सहित बैठ कर श्री राम बोले—"महाशय! आप लोगों पर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। अब तुम सब वानर व राक्षस यथेच्छित स्थान पर जाओ। मेरे आत्म-स्वरूप प्रिय महावीर हनुमान! आपके ऋण से तो मैं कभी अनृण हो नहीं सकता, आप धन्य हैं। सुग्रीव जी! आपने मित्रता वा धर्मभाव से मेरा बड़ा हित किया है। अब आप किष्किन्धा नगरी को पधारिये और प्रिय विभीषण! तुम मेरे दिए लंका के स्वराज में बसो। अब तुम्हें कोई भय नहीं दे सकता। अब मैं अयोध्या को जाता हूँ। राम को जाते देखकर हनुमान को आगे कर सबने कहा—

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नपसत्तम।। यु० १२२।२०

"राजन्! हम सब अयोध्या को जाना चाहते हैं। हम शीघ्र आपको जन्म देने वाली माता कौशल्या को प्रणाम कर तथा आपका राज्याभिषेक देखकर अपने-अपने स्थान को लौट आयेंगे।"

हनुमान आदि के वचन सुनकर राम बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे, 'महानुभाव! यदि ऐसा ही है, तो बहुत ही अच्छा है। मेरे लिए

तो यह अति आनन्द का अवसर होगा, जो आप लोगों के साथ मैं अयोध्या नगरी का आनन्द उपभोग करूंगा।"

पश्चात् पुष्पक-विमान में अपने इन सभी मित्रों और सहायकों सहित श्री राम मार्ग में सीता जी को सागर-सेतु आदि का परिचय देते हुए तथा किष्किन्धा से पण्डिता तारा, रूमा और तप-परायणा पद्मरागा आदि को लेकर मुनि भरद्वाज के आश्रम पर आ रुके।

भरद्वाज के आश्रम से दूसरे दिन राम चले, अयोध्या को देख वे बड़े प्रसन्न हुए और हनुमान को बुलाकर कहा—'वीर! जाकर देखो राजधानी में कुशल तो है? मार्ग में शृंगवेर पुर में जाते हुए निषादपति महाराज गुह को मेरा कुशल समाचार देना क्योंकि वह मेरी कुशलता सुन बहुत प्रसन्न होगा। वह मेरा मित्र है। वह तुम्हें अयोध्या का मार्ग बताकर भरत के समाचार भी कहेगा।"

"फिर अयोध्या में जाकर तुम भरत से मेरा, लक्ष्मण और सीता का कुशल समाचार देना तथा सीता-हरण, राक्षस-युद्ध आदि सब कुछ कहना और तुम्हारे कहते हुए जो रूप चेष्टा भरत की हो, वह मुझे बताना।' (प्रकट है कि हनुमान इससे पहले भरत से नहीं मिले थे)

पुनः राम का सन्देश लेकर हनुमान पहिले महाराज गुह के पास आये, और उसे सन्देश दिया, जिसे सुन वह बड़ा प्रसन्न हुआ तथा स्वागत के लिए बड़ी धूमधाम से प्रजावर्ग को साथ लेकर तैयार हो गया।

वहाँ से वे भरत के पास गये। जाकर देखा कि भरत मुनियों की भाँति जटा बल्कल धारण कर, फल, मूल खाते हुए व्रत पूर्ण कर रहे हैं और राज्याधिकार पाने पर भी बड़े चिन्तायुक्त प्रतीत होते हैं।

तब विरह-व्याकुल भरत को श्रीराम के आने की सूचना देकर उनके प्राण बचाने का काम हनुमान ने किया। रामचरित मानस का वर्णन है—

राम विरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

वहाँ श्री हनुमान जी भरत की प्रेम-दशा देखकर कहते हैं—

जासु ब्रिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरन्तर गुन गन पांती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

इस प्रकार श्री राम के आने का कुशल-समाचार सुनते ही श्री भरत जी में नये जीवन का संचार हो आया। उनके पूछने पर अपना परिचय देते हुए हनुमान जी कहते हैं—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना॥
दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। × ×

कितना विनय भाव है। यह बात सुनते ही भरत जी उठकर बड़े हर्ष और आदर के साथ उनसे मिले। अपने आनन्द का वर्णन करते हुए अन्त में भरत जो ने यहाँ तक कह दिया—

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अव प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

: ४१ :

राम राज्याभिषेक : स्वागत समारोह

भरत तथा प्रजा के आग्रह पर श्री राम ने जब राज्यभार उठाना स्वीकार कर लिया। तब सारे राष्ट्र में आनन्द-उल्लास के बाजे बजने लग गये। थोड़े ही दिनों में राज्याभिषेक के लिए एक दिन निश्चित कर दिया गया।

निश्चित दिन सब सामग्री एकत्र कर, ठीक समय पर रत्नों के आसन पर राम को बैठाया गया। फिर वशिष्ठ, विजय, जावालि, काश्यप, कात्यान, गौतम और वामदेव आदि ऋषियों के अतिरिक्त विशेष निमन्त्रण पर आये हुए महर्षि विश्वामित्र एवं महामुनि अगस्त्य और वाल्मीकि आदि ने सब प्रजाजनों की सम्मति से उनको राज्याभिषेक दिया।

राज्याभिषेक की विधि सम्पन्न होने पर सम्पूर्ण प्रजाओं और माण्डलिक राजाओं ने अपने हृदय सम्राट महाराजा भी सभी को

चरणों में अपनी भेंट प्रस्तुत की। उदारमना श्रीराम ने भी सभी को यथायोग्य उपहार प्रदान करने के पश्चात् सम्पूर्ण ऋषि-मण्डल और अपनी तीनों माताओं की चरण स्पर्श पूर्वक अर्चना करते हुए विनय भरी वाणी में कहा—

'यह जो इतना बड़ा लोक संग्राहक राष्ट्र कार्य हो सका देव राष्ट्र आर्यराष्ट्र वानर राष्ट्र और असुर राष्ट्र जो सर्वथा एकीभूत हो सके एकान्त भोगवाद और भौतिकवाद पर टिकी आसुरी सभ्यता का पूर्णतया निरसन हो जो इन सभी राष्ट्रों में सर्वत्र एकमेव वैदिक संस्कृति का पवित्र ध्वज उत्तोलित किया जा सका, उसका मूल श्रेय हमारे ऋषि-मण्डल और विप्र वृन्द को है। हमारे जन्म के आरम्भ से लेकर आजतक हमारी सम्पूर्ण गतिविधियों के मूल संचालक हमारे ये ऋषिगण ही रहे हैं और यही हमारी सफलता का रहस्य है।

जिस राष्ट्र की ब्राह्म शक्ति जागरूक रह वेदमाता के शब्दों में उद्घोष करतीं है- 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः" तथा जिस राष्ट्र की इन्द्र शक्ति (क्षात्र शक्ति) ब्राह्म शक्ति का अनुशासन स्वीकार करती है, वह राष्ट्र निश्चय ही विजयो और सफल होता है। अतः आज के हर्षोल्लास मय समारोह की वेला में पुनः-पुनः मैं अपने ऋषि मण्डल एवं विद्वन्मण्डल का अभिन्दन करता हूँ। इस इतने दायित्व-पूर्ण पद पर जो मुझे प्रतिष्ठित किया गया है, सो मैंने तो गुरुदेव तथा सभी ऋषियों के आदेश का पालन मात्र किया है। इस वैदिक स्वराज के, इस सांस्कृतिक साम्राज्य के सच्चे शासक और संचालक तो ये मुनि वृन्द ही हैं, मैं तो मात्र प्रतिनिधि या निमित्र मात्र ही हूँ। मुझे विश्वास है कि इनका वरद हस्त और स्नेहिल छाया मुझे कर्त्तव्य-पालन की शक्ति देगी।"

श्री राम ने तब महाराज विभीषण, महाराज सुग्रीव वीरवर नल-नील; युवराज अंगद और महामति जाम्बवान् के अतिरिक्त गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, आदि के उपकारों की विस्तार से

चर्चा करते हुए सभी के प्रति बार-बार आभार प्रदर्शित किया। अन्त में महावीर हनुमान का आलिंगन करते हुए वे बोले—"ये हैं अंजनी-कुमार, पवन-पुत्र, अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रती, तपः पूत, परम वैदिक विद्वान् गदाधारी वज्रांगी महावीर हनुमान ! वानर राष्ट्र के बिना मुकुट के सम्राट्, युवा वानर वीरों के संक्रान्ति दल के नायक और महान् निर्माता। सेवा धर्म के मूर्तिमान प्रतीक, महर्षि अगस्त्य के सम्पूर्ण जीवन की सबसे बड़ी पूंजी उनके अमर शिष्य हनुमान ही सच में इस विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य के मूल संस्थापक हैं। इनका क्या धन्यवाद करूँ ? कैसे करूँ, कहाँ तक करूँ—किन शब्दों में करूँ ? अशक्य है वह तो। सत्य यह है कि मैं ही क्या सम्पूर्ण आर्यावर्त का एक-एक नागरिक महावीर के ऋण से अनृण नहीं हो सकता।"

यह कहते-कहते श्रीराम के नेत्र हनुमान के उपकारों और सेवा साधनामय तप त्याग का स्मरण कर सजल हो उठे। इस प्रसंग में श्रीराम ने माता अंजना और महाराज पवन की तपस्या, महर्षि अगस्त्य की अद्भुत अखण्ड साधना आदि का संक्षेप भी प्रस्तुत किया।

पश्चात् भगवान राम ने वानर वीरांगना दल की ओर संकेत कर उसकी संयोजिका देवी पद्मरागा की अनूठी तपश्चर्या की शत-मुख से वन्दना करते हुए बताया "ये हैं महावीर हनुमान की धर्म-बहिन, सेनाध्यक्ष नील की एकमात्र पुत्री देवी पद्मरागा जिन्होंने अपने धर्म-भाई हनुमान के अनुसरण में आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ले वीरांगना दल का निर्माण कर सम्पूर्ण वानर राष्ट्र के घर-२ में अलख जगा उसे महाशक्ति का रूप दिया है। भाई भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न माताओं और देवी सीता का तप तो अकथ्य है। इस अवसर पर मैं सभी का अभिनन्दन करते हुए प्रजा-जनों का तो परम ऋणी हूँ जिन्होंने अपने इस तुच्छ सेवक को १४ वर्ष तक भुलाया नहीं है।"

अन्त में अखिल विघ्न-विनाशक परम-पिता परमात्मा के धन्य-वाद एवं स्तुति-गान पूर्वक श्री राम ने अपना आसन ग्रहण किया।

महामहिम श्री राम के नेत्र कृतज्ञता भार से नत थे। वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य या राम-राज की स्थापना की ऋषियों की जीवन-साध आज पूर्ण हो गई थी। और इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग में ऋषि-मण्डल का सर्वथा मौन भाव कितना मुखर था, कितना दर्शनीय !

: ४२ :

अनन्य निष्ठा एवं हृदय-दर्शन

इस पुण्य अवसर पर विप्रों और ऋषि-मुनियों को विपुल दान-दक्षिणा देने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ की अनुमति श्री राम ने लंकेश विभीषण, वानर-राष्ट्र के अधिपति सुग्रीव, निषादराज गुह, युवराज अंगद, जाम्बवान्, नल-नील और अन्य माण्डलिक राजाओं को पुष्कल रत्नाभूषण एवं मूल्यवान् वस्त्रादि भेट किये। अपने आत्म-स्वरूप हनुमान को वे क्या भेट करें, वे यह ठीक से सोच नही पा रहे थे कि इसी बीच माता सीता ने अंजनी-कुमार के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए स्वयं अपना अमूल्य रत्न जटित कण्ठहार हनुमान जी के गले में डाल दिया। सभा-मण्डप में हर्ष ध्वनि और जय घोषों से गूँज उठा। पर यह क्या ? सबके देखते-२ हनुमानजी ने वह कण्ठहार उतार लिया और सभी के आश्चर्य और कौतूहल को चरम बिन्दुतक ले जाते हुए वे एक-एक रत्न को तोड़कर भीतर कुछ देखते और उसे तुरन्त सभा मण्डप में फेंक देते।

पवन-कुमार के इस विचित्र व्यवहार से माँ सीता के तो कष्ट की सीमा न रही। व्यथा भरे हृदय से सीताजी ने पूछा—"पुत्र ! क्यों क्या हुआ ?"

"माँ तुम्हारा यों आश्चर्य में डूबना और व्यथित होना अस्वाभाविक नहीं है। मैं आपके अन्तर के कष्ट को देख पा रहा हूँ, माँ ! पर मैं विवश हूँ, मेरे निकट आपका यह अमूल्य उपहार एक निरर्थक वस्तु से अधिक नहीं है। यह मेरे कण्ठ का भूषण नहीं, दूषण है, माँ !" हनुमान ने बड़ी ही रससनी किन्तु मर्म भरी वाणी में कहा।

"तो वत्स ! इसे किसी को दे ही देना था। आखिर तुम इन रत्नों को एक-एक तोड़ते हो, क्या देखते हो इनमें और क्यों फेंक देते हो, इन्हें।" सीताजी ने उसी व्यथित स्वर में पुनः प्रश्न किया।

'माता ! मैं इनको तोड़कर देखता हूँ कि इनमें से किसी में भी 'राम' अङ्कित है या नहीं। राम का अर्थ है मेरे निकट—राष्ट्र, राम का अर्थ है मानवता, राम का अर्थ है मूर्तिमान् वैदिक संस्कृति और राम का अर्थ है मूर्तिमान् धर्म—"रामो विग्रहवान धर्मः" क्या आप नहीं देख रही हैं, माता ? आज सम्पूर्ण राष्ट्र राम-मय है, संस्कृति मय है, और हैं धर्म मय।' अपने निवेदन को जारी रखते हुए हनुमान जी कह रहे थे--'और मेरे महान राम हैं—राष्ट्रमय !'

"मातः ! मुझे पवित्र वेद का एक मन्त्रांश याद आ रहा है— "त्वं यज्ञेषु ईड्यः" यज्ञों में तू ही पूजनीय है, यज्ञों के द्वारा हम तेरी ही पूजा करते हैं, हमारा प्रत्येक कर्म तेरी ही पूजा हो। (Work is worship) ऐसा तभी होता है जब हमारा हर आचार, व्यवहार, रीति-नीति, रहन-सहन, आहार-विहार सभी कुछ जन सेवार्थ ही होता है। न केवल भौतिक वस्तुओं का वरन् हमारे मन, मस्तिष्क पूजा-उपासना और जीवन की सम्पूर्ण मान्यताओं का भी जब 'राष्ट्रिय करण' होता है, हम वही सोचेंगे, वही बोलेंगे, वही करेंगे, वही खायेंगे, वही पहिनेंगे, उसी पूजा-पद्धति को अपनायेंगे और उसी आजीविका-साधन को ग्रहण करेंगे जो हमारे राष्ट्र का गौरव बढ़ाये जिसके द्वारा राष्ट्र-वासियों की सेवा हो, जन-जन का कल्याण हो। यही है जीवन की यज्ञ-मयता, यही है धर्म-मयता, यही है ईश्वर-मयता और यही ह राष्ट्र-मयता। भगवान राम इस आदर्श पालन में सबसे आगे हैं इसी से 'राम', यह शब्द राष्ट्र का पर्याय बन गया है, आज। इसी-लिए राम-भक्ति का अर्थ है राष्ट्र-भक्ति, मानव-भक्ति, मानव-भक्ति।"

'मातः ! मैंने इन रत्न कणों में 'राम' को नहीं पाया अर्थात् अपने 'राष्ट्र' को नहीं पाया। राष्ट्र की आत्मा को नहीं पाया, शायद अब भी मेरी बात स्पष्ट न हो। माँ, मेरा आशय है—राष्ट्र की आत्मा

हैं उसके प्रजा जन। जब तक मेरा प्रत्येक राष्ट्र बन्ध इतना धन-धान्य सम्पन्न न हो जावे कि वह इसी प्रकार के रत्नों का हार धारण कर सके, मुझे इस रत्नहार को ग्रहण करने का अधिकार नहीं। अतः इसकी निरर्थकता स्वयं सिद्ध है। जब तक राम-राज्य का एक भी व्यक्ति सन्तप्त है, किसी एक भी आँख में आसू हैं, राष्ट्र के किसी भी कोने में कहीं भी अज्ञान, अन्याय या अभाव से उत्पन्न कराह है, टीस है, दर्द है, वेदना है, मेरी राम-भक्ति अधूरी है।

"माँ, आपकी भेट की अवमानना का साहस मुझमें कहाँ ? आपके स्नेह के एक-एक कण से ही तो इस शरीर का रोम-रोम निर्मित है। अतः माँ आशीर्वाद दो कि इन रत्न कणों के फेंके हुए दाने राम-राज्य की खेती बन जावें। यहाँ का हर घर रत्न-राशि से आपूर हो यहाँ का हर व्यक्ति आपके द्वारा पुरस्कृत रत्नहार को धारण कर सकने की क्षमता रख सके। माँ, उसी दिन आपका यह पुत्र रत्नहार को धारण करेगा। और उसी दिन इन रत्न कणों को तोड़कर इनमें राम-दर्शन का मेरा अर्थ और अभिप्राय पूर्ण होगा। तो अब मेरे शेष जीवन का मिशन राम राज्य को इतना समृद्ध, इतना सुखी और आदर्श बनाना होगा, जिससे यह वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य, यह 'राम-राज्य' ईश्वरीय राज्य का, दैवी राज्य का, आदर्श राज्य का प्रतीक या पर्याय बन जावे। तभी मैं समझूँगा कि स्नेहशीला माता अंजना और पू० पितृदेव की तपस्या फलवती हुई और..........और "हनुमान जी का गला भर आया, नेत्रों से प्रेमाश्रु छलक आये। कुछ रुक कर ही वे कह सके—"और मेरे जीवन-दाता, वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य के निर्माता गुरुदेव महामुनि अगस्त्य और हाँ महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र की जीवन-साधना भी तभी सिद्ध होगी। और तभी होगी महाराज राम के 'अश्वमेध यज्ञ' की पूर्णाहुति।"

उनके अन्तिम शब्द थे—माँ, मुझे और कुछ इने-गिने मित्रों को राम राज्य का निर्माता कहा गया। पर राम राज्य के निर्माता हैं। हमारे वे शत सहस्र अज्ञात नरवीर जो बलिदान हो गये। हमारे राम राज्य के निर्माता हैं—हमारे महावीर यशस्वी सैनिक और आर्य

राष्ट्र की सम्पूर्ण प्रजा। हमें मन्दिर का कलश दीखता है पर जिस नींव के पत्थर के अमर किन्तु अनजाने बलिदानों के सहारे वह गर्वोन्नत खड़ा है, उसे सामान्यतः हमारी दृष्टि देख नहीं पाती। आयें हम आज के इस महा महोत्सव में अपने उन वीरों का स्मरण करें, उनके चरणों में श्रद्धा-पुष्प चढ़ावें और कवि के शब्दों में कहें—

"गड़ गए जो नींव में उन पत्थरों को,
याद करलें जो नहीं देते दिखाई।

"माँ अब मुझे कुछ कहना नहीं है। आशीर्वाद दो मां, मैं जन-जन में मेरे 'राम' के दर्शन कर सकूं—जन-जन में राष्ट्र-देवता का साक्षात्कार कर सकूं—ऐसी हो मेरी पूजा, ऐसी हो मेरी उपासना!'

यह कहते-कहते महावीर हनुमान ने माता सीता के चरण पकड़ लिए और सभी ने देखा—भगवान राम ने अपनी प्रलम्बित भुजाओं में महावीर को बाँधकर हृदय से लगा लिया राम और हनुमान जैसे एकाकार हो गए। राम के विशाल व्यक्तित्व में जैसे महावीर ने अपने को विलीन कर लिया हो।

महावीर हनुमान ने अपने उपरोक्त शब्दों में अपना हृदय उंडेल कर (चीरकर, रख दिया था। और सभी ने देखा कि उस दिव्यात्मा के रोम-रोममें केवल 'राम' बसा था, केवल राष्ट्र बसा था। मानवता बसी थी, राष्ट्रके कोटि-कोटि प्रजा-जन वहाँ थे। हनुमानका यह हृदय दर्शन युग युग तक राम और राष्ट्र को, धर्म और देश को, अध्यात्म और भौतिकता को तथा लोक और परलोक को भिन्न और परस्पर विरोधी मानने वालों का मार्ग दर्शन करता रहेगा।

सभा विसर्जन के पूर्व सभी एक स्वरसे जय-घोष कर रहे थे-राजा रामचन्द्र की जय! पर तभी सबने देखा, सुना और अनुसरण किया—श्री राम स्वयं उद्घोष कर रहे थे—

जय हनुमान! जय महावीर!! जय वज्रङ्गी!!!

नेपथ्य में गुंजित था—'राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः।"

उपसंहार

महावीर हनुमान के 'शुद्ध चरित' के पारायण से भली भाँति प्रकट है कि अखण्ड ब्रह्मचर्य, अनुपम शौर्य, अप्रतिम नीतिमत्ता, दर्शनीय राजनीति-कौशल अलौकिक पुरुषार्थ, अनूठा पाण्डित्य एवं बुद्धि गरिमा और इस सबके साथ ही आदर्श सेवाभाव युक्त अद्‌भुत समर्पण भाव एवं अतुलनीय नम्रता और शालीनता ये सभी तथा अनेकों अन्य आर्योचित गुण किसी एक महापुरुष में देखने हों तो वे हैं पवन पुत्र अंजनी कुमार, ऋषि अगस्त्य के अमर शिष्य महावीर हनुमान।

कैसे शोक का स्थल है कि ऐसे महान् चरित्र पर भी पुराणकारों द्वारा अलौकिकता की छाया डाल अवतारवाद का ढक्कन मढ़ कर घोर अनर्थ हुआ है। मानव जाति के मुकुट मणि इस महापुरुष को भी केवल पूजा' की वस्तु बनाकर मनुष्य के अन्तर का निकृष्ट स्वार्थ ही हँसता रहा है। इस आदर्श आर्य वीर को 'वानर' शब्द से उत्पन्न भ्रान्ति वश कोरा 'बन्दर' बनाते समय तनिक भी तो बुद्धि-विवेक से काम लिया होता !

श्रीराम और उनके समकालीन हनुमान, सुग्रीव, रावण आदि का विश्वस्त ऐतिहासिक वृत्त हमें वाल्मीकीय रामायण में ही मिल सकता है। यद्यपि उसमें भी वाम मार्ग काल में बहुत सी मिलावटें हुई हैं, पर थोड़ा भी ध्यान देने से कपड़े के पैबन्द की तरह यह मिलावट साफ-साफ बोलने लगती है। वाल्मीकि रामायण में महावीर हनुमान और बाली सुग्रीव आदि का जो भी विवरण मिलता है उससे स्पष्ट रूप से प्रकट है कि उस काल में सम्पूर्ण भारत में चार मानव वंश—देव, आर्य वानर और असुर—थे। इनके अपने-अपने राज्य थे। यों वानर राष्ट्र निवासी वानर कहलाते थे।

आज भी भारत देश के अनेकानेक स्थलों में वानर, भालू और रीछ जाति के वंशज क्षत्रिय विद्यमान हैं। राजपूताना के जङ्गल में

या जंगली ग्रामों में बसने वाले लोगों की, इसी प्रकार मध्य प्रदेश में डेरवा व मुण्डा नाम की जो जातियां बसती हैं उनका गोत्र वानर' है। और राजपूताना तथा कांगड़ा गांव के जंगलों में रहने वाले लोग ढोर जाति के हैं उनका गोत्र भालू है।

कभी इस जाति की शक्ति विश्व प्रसिद्ध थी तथा भारत से बाहर वर्मा, श्याम, मलाया, इण्डोनेशिया कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा बोर्निया, सिंगापुर (ब्रह्मा), बाली, रूस, गान्धार (कन्धार) आर्यान् (ईरान) आदि में इस जाति के वीरों का शासन था। महर्षि वाल्मीकि ने श्री हनुमान जी और वानर जाति का वही ऐतिहासिक शुद्ध रूप प्रस्तुत किया है।"

आदर्श मानव

हनुमान एक निष्ठावान् आदर्श मनुष्य थे—मनुष्यता से युक्त सच्चे मानव। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—'मनुष्य उसी को कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति और प्रियाचरण तथा अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश और अप्रियाचरण सदा करता रहे।........चाहे प्राण भले ही चले जावें पर इस मनुष्य पन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

[सत्यार्थ प्रकाश]

ऋषि निर्धारित मनुष्यता की इस कसौटी पर हनुमान पूर्णतया खरे उतरते हैं। अन्यायकारी बलवान् बाली का साथ न देकर वे निर्बल पर धर्मात्मा सुग्रीव का साथ देते हैं। उन जैसा विद्वान् बलवान और नीतिमान् बाली के यहाँ ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता था, पर मानवता के इस पुजारी ने समस्त सुखोपभोग पर ठोकर मारकर स्वेच्छया कण्टकाकीर्ण न्याय-पथ और धर्म-पथ का वरण किया और वे अन्त तक सुग्रीव के सहयोगी रहे।

अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रती

अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना और उस साधना का उपयोग जन-कल्याण, प्रजाहित और राष्ट्र-सेवा के लिए करने वाले जिन कतिपय महात्माओं के शुभ नाम इतिहास के पृष्ठो में हमें देखने को मिल सकते हैं, उनमें हनुमान जी का स्थान निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महाकपि नाथूराम 'शंकर' शर्मा ने ब्रह्मचर्य महिमा सम्बन्धी अपने एक गीत 'प्रशस्ति पंचक' में वीरवर हनुमान ब्रह्मचर्य साधना का वर्णन निम्न शब्दों में किया है—

सुग्रीव का सु-मित्र बड़े काम का रहा।
प्यारा अनन्य-भक्त सदा राम का रहा।
लंका जलाय काल खलों को सुझा दिया।
मारे प्रचण्ड-दुष्ट दिया भी बुझा दिया॥
हनुमान बली वीरवरों में प्रधान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान् है॥

महावीर की शूरता, नीतिमत्ता एवं पाण्डित्य

हनुमान की नीतिमत्ता का प्रथम परिचय राम और सुग्रीव की मैत्री कराने के रूप में हमारे सामने आता है। अपने बुद्धि-चातुर्य, वाक्-कौशल, सम्यक-अभिभाषण और पाण्डित्य से वे श्री राम को प्रभावित करनें में सफल होते हैं। हम जानते हैं कि हनुमान का यही प्रभाव राम को सुग्रीव के साथ मैत्री के बन्धन में बांध देता है।

लंका-प्रवेश और वहाँ पहुँच कर सीता भेंट रूप कार्य-सिद्धि में हनुमान की बुद्धि प्रखरता सर्वथा द्रष्टव्य है। रावण जैसे दुर्दान्त शत्रु के गढ़ में प्रवेश कर सफलता पूर्वक लौटना हनुमान के असाधारण बुद्धि-वैभव का ही परिचायक है।

सीता को पहचानने, अपने विषय में उन्हें विगत-सन्देश करने अशोक-वाटिका के उजाड़ने, अनेकों वीरों को मार गिराने और लंका

दहन आदि से रावण सभा में अपने बल, बुद्धि और शौर्य का सिक्का जमाने आदि सभी प्रसङ्गों में उनकी गति एवं प्रतिभा अद्वितीय है।

ऐसा बल, ऐसा विक्रम, इतना पांडित्य और ऐसी बुद्धिमत्ता एवं नीतिमताके धनी होने पर भी हनुमान को अभिमान छू भी नहीं सकता है। वे निरभिमानता और सेवा भाव की मूर्ति हैं। जहाँ कोई भी तैयार न हो वहाँ हम हनुमान जी को सेवार्थ प्रस्तुत पाते हैं।

हनुमान ही संजीवनी बूटी लाकर सबकी प्राण-रक्षा करते हैं। दौत्य-कर्म में तो वे पारंगत हैं। उनकी सेवा-भावना के कारण ही वे 'राम सेवक' या 'रामदूत' करके प्रसिद्ध हैं। सेवक की कृतकृत्यता इसमें है कि स्वामी उसका प्रशंसक हो। राम हनुमान के प्रशंसक ही नहीं, उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं।

सच में हनुमान ऐसे आदर्श महामानव ही किसी राष्ट्र एवं संस्कृत के गौरव हैं। अन्त में हम कविवर श्याम नारायण पाण्डेय की 'रामदूत को प्रणाम' कविता के आरम्भिक अंश के साथ ही इस प्रकरण को विराम देंगे —

> प्रगति पराक्रम और पौरुष के प्रचण्ड रूप
> विद्या के कला के मूर्त
> मूर्तिमान ब्रह्मचर्य
> धर्मशील, न्यायशील, शौर्यशील, दौत्य-कर्म-मर्म-शील
> संस्कृत के
> संस्कृति के
> ह्रस्व दीर्घ झंकृति के
> भीतिहीन हुंकृति के
> दीप्तिमान देवता
> वायुपुत्र को प्रणाम,
> रामदूत को प्रणाम,
> आन्जेय को प्रणाम !

—:※:—

हनुमान बन्दर नहीं, महामानव !

(एक सरल विवेचन)

वीर व्रती हनुमान, बाली, सुग्रीव और अंगद आदि मनुष्य थे, बन्दर नहीं. इस विषय में प्रथम बाल्मीकि रामायण में प्रमाण देखें-

(१) हनुमान की बातचीत सुन राम लक्ष्मण को कहते हैं कि यह ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम को अच्छी तरह जानता है तथा इसने अनेक बार व्याकरण पढ़ा है (किष्कि० सर्ग ३।२८) (२) राम-सुग्रीव की मैत्री के समय हनुमान ने याज्ञिक ब्राह्मणों की भाँति अरणियों से अग्नि को निकाल कर हवन कुण्ड में स्थापन किया— किष्किन्धा ५। १४ (३) हनुमान की माता अंजना और पिता केसरी वन्दर न थे किन्तु धार्मिक पुरुष थे, और मनुष्य की सन्तान पशु, पक्षी कभी नहीं हो सकती। देखो वा० रा० कि० सर्ग ६६।८ (४) वर्षाकाल बीतने पर राज्य पर बैठे सुग्रीव को सीता की तलाश करने के लिए महा मन्त्रि के नाते जो उपदेश हनुमान ने सुग्रीव को दिया क्या उसे कोई वेदवित् विद्वान के बिना कर सकता है ? देखो कि० २९।८-२७ (५) सीता की सुध के लिए जब हनुमान लंका की अशोक वाटिका में गये तो पहिले सीता ने उसे रावण समझ कर बातचीत में संकोच किया पर पीछे हनुमान ने विश्वास दिलाया कि मैं राम का संदेश लेकर आया हूँ, तथा राक्षसों के डर से रात को लंका में दाखिल हुआ हूँ, तब सीता ने प्रसन्नता प्रगट की। देखो सु० कां० सर्ग ३५। इससे भी पाया जाता है कि हनुमान बन्दर न थे पुरुष थे। एक तो यदि बन्दर होते तो हनुमान में रावण का भ्रम न होता। दूसरे हनुमान लंका में रात में आते बल्कि दिन को अन्य पशु-पक्षियों की भाँति आते। फिर राज्य के गुप्तचर भी विदेशी पुरुषों की देखरेख किया करते हैं, न कि पशु-पक्षियों की। (६) हनुमान सीता को संस्कृत भाषा में रामका यशोगान सुनाते हैं क्या यह वन्दर द्वारा सम्भव है ? (७) राम हनुमान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उन्हें (युद्ध १।८) में 'पुरुषोत्तम' कहते हैं

क्या बन्दर के लिए यह प्रयोग सम्भव है? (८) बाली की राम से बातचीत, सुग्रीव को संदेश, अंगद को उपदेश तथा मानुषी धर्म शास्त्रानुसार छोटे भाई की स्त्री से बलात् अकाल में सम्बन्ध करने के अपराध में वध रूप दण्ड, श्रीराम के हाथ से मिलने और अन्त को द्विजों की भांति वेद-रीति अनुसार संस्कार करने वा कराने से प्रतीत होता है कि वह बन्दर न था। (९) उत्तर काण्ड में लिखा है कि जब रावण युद्ध के लिए आया तो बाली समुद्र तट पर संध्या कर रहा था। देखो (उत्तर काण्ड सर्ग ३४) स्पष्ट है कि वह न केवल साधारण पुरुष था किन्तु वैदिक धर्मी उच्च वर्ण का राजा था।

हमारे विचारमें तो वह सूर्य वंश की किसी बिछुड़ी हुई शाखा का फल था, क्योंकि उसके पिता का नाम अंशुमान और अन्य वृद्धों का नाम सूर्य वा सूर्य-वंशी लिखा है—देखो वा० रा० कि० का० सर्ग ४।१६ (१०) सुग्रीव को जो बाली का भाई था 'भास्करात्मज' 'सूर्यपुत्रो महावीर्यं' के विशेषण से स्मरण किया है। (११) बाली के मरने पर उसकी स्त्री ने उसे 'आर्य' कह कर विलाप किया है* देखो कि० २०।१३ (१२) जो लोग सुग्रीव को बन्दर मानते हैं वे तनिक विचार करें वा वाल्मीकि रामायण पढ़कर बतावें कि—क्या कभी बन्दरों के भी कभी वेदवेत्ता ब्राह्मण मन्त्री होते हैं? कि० २।२६-३५ (१३) क्या बन्दरों की शरण में भी कभी रामचन्द्र जैसे विद्वान् वा योद्धा जाया करते हैं? कि० ४।१८-१९ (१४) क्या बन्दर भी अग्निहोत्र कर वेद मन्त्रों से मैत्री दृढ़ किया करते हैं? कि० ५।१४-१६ (१५) क्या कभी बन्दरों में भी शास्त्र विहित पाप-पुण्य की मर्यादा देखी है? कि० सर्ग १८।४।४१।। (१६) क्या कभी बन्दरों का राजतिलक, रत्न, धूप, दीप वा औषधों के जल से स्नान और हवन यज्ञ से होता है वा उनमें से

---

* समीक्ष्यं व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपातह।
सुप्तयेव पुनरुत्थाय आर्य पुत्रेति शोचती।।

राज्याधिकार की पद्धति ऐसी ही होती है कि जैसी सुग्रीव के वंश में थी ? कि० २६।२४ (१७) क्या किसी बन्दर को 'आर्य' भी कहा जाता है ? कि० ५५ ७ (१८) क्या बन्दरों में भी तारा ❀ रूमा, अंजना जैसी पति-व्रता और शास्त्र जानने वाली स्त्रियाँ देखी हैं ? देखो कि० सर्ग ३५।३-५ (१९) क्या बन्दरों की पत्नी बन्दरी की जगह नारियां हो सकती हैं ? (२०) क्या कभी किसी बन्दर को विद्वानों वा राजाओं की सभा में बुलाया गया था ? उत्तर काण्ड सर्ग ४० । (२१) इसी प्रकार अंगद द्वारा अपने पिता महाराज बाली के अन्त्येष्ठि-संस्कार के पश्चात् नवीन यज्ञोपवीत धारण ततोऽवित् विधिवद्दत्वा सोऽप स्व्य चकार्ह' (कि० २५.५० पढ़कर और महावीर हनुमान के लिए 'काँधे मूँज जनेऊ छाजै (हनुमान चालीसा की रट लगाकर भी आप इस आर्य-रत्न को बन्दर कहने का दुस्साहस करेंगे ?

गोस्वामी जी क्या कहते हैं

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पौराणिक प्रभाव-वश आर्य जाति के मुकुट-मणि महाराज हनुमान तथा बाली-सुग्रीव आदि अन्य वानर वीरों को दुमदार बन्दर मानने का प्रयत्न किया है, किन्तु किसी भी ऐतिहासिक प्रकरण में वे सत्य को छिपा नहीं सके हैं । अनेक प्रसंगों में उनका कथन उन्हीं के द्वारा खण्डित हुआ है । संक्षेपतः विचार करें—

(१) गोस्वामी जी स्वयं मानते हैं कि वानरों का राज्य था उसकी राजधानी किष्किन्धा थी । उनका राजा बाली था । 'मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनुसाईं" से प्रकट है कि मन्त्रि-परिषद् थी । क्या यह सब बन्दर (पशु) जाति में संभव हैं ? (२) क्या बन्दरों में भाई-भाई का सम्बन्ध या पति-पत्नी का मनुष्यवत् श्रोताचार सम्भव है ? (३) क्या

❀ सुषेणा दुहिता च वा अर्थ सूक्ष्म विनिर्णये ।
औत्पाति के च विविधे सर्वतः पारि निष्ठिता । कि० २२

श्री राम की यह युक्ति—"अनुज वधू भगिनी सुत नारी।" बन्दर (पशु) जाति के लिए हो सकती है? (४) क्या मानव श्री राम की मित्रता "पावक साखी राखि कर कीन्ही प्रीति दृढ़ाइ" यज्ञाग्नि को साक्षी करके बन्दर (पशु) सुग्रीव के साथ सम्भव है? (५) और क्या इस यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करने वाला 'पुरोहित' हनुमान बन्दर था (६) "विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ" गोस्वामी जी का यह वचन क्या कहता है? क्या किसी बन्दर (पशु) के तिलक लगाकर उत्तरीय डालकर कोई पुस्तक बगल में पकड़ा कर 'ब्राह्मण बनाया जा सकता है? और महर्षि वाल्मीकि के अनुसार तो श्री राम के शब्दों में चारों वेदों का पण्डित, जिसके उच्चारण में व्याकरण की एक भी न हो ऐसा ब्राह्मण बन्दर पशु बन सकेगा? (७) और क्या राम वेश बनाये हुए बन्दर को न पहिचान कर यह कहेंगे—'विप्र कहहु निज कथा बुझाई?' (८) क्या बन्दरों की पत्नी तारा जैसी विदुषी स्त्री होगी? (९) क्या राम का यह उपदेश—'क्षिति जल पावक गगन समीरा' बन्दरिया तारा (पशु) के लिए था? (१०) क्या 'मृतक कर्म विधिवत् सब कीन्हा' बाली की वैदिक विधि से अन्त्येष्टि क्रिया का राम द्वारा सम्पन्न करना यह बताता है कि बाली बन्दर (पशु) था?

(११) लक्ष्मण तुरत बुलाये, पुरजन विप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ; अंगद कहँ युवराज॥

क्या यह राजतिलक और युवराज पद वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा बन्दरों (पशुओं) को लक्ष्मण जी ने दिलाया था? (१२) क्या बन्दर (पशुओं) में बाली, सुग्रीव, हनुमान आदि ऐसे सुन्दर नाम सम्भव हैं? (१३) क्या बन्दर (पशु) बाली ने रावण जैसे महाबली को परास्त किया था? (१४) क्या ये पशु बन्दर सीता की खोज करने गये थे? (१५) क्या पशु वानर विविध शस्त्रास्त्रों का चलाना जानते थे? (१६) क्या बन्दरों की पत्नी नारियां (मानवी) हो सकती हैं? (१७) क्या सेतु निर्माता नल-नील (पशु) बन्दर थे?

निम्न तथ्यों पर विचार करें—

(१) ऊपर वर्णित अन्तिम तथ्य पर पुनः विचारें कि लंका विजय से पूर्व वानरी सेना के इन्जीनियर नल-नील ने जिस कुशलता से इतने विशाल पुल का निर्माण किया, वह बन्दरों द्वारा सम्भव है? इस निर्माण प्रक्रिया का वाल्मीकि रामायण में विस्तार से वर्णन है। जिससे प्रकट है कि वानर जाति अनेकों अद्भुत वैज्ञानिक उपकरणों और विशाल भारवाही यन्त्रों का प्रयोग ऐसे निर्माण कार्यों के लिए करते थे—

हस्ति मात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च। यु० २२।६०
सूत्राण्यन्ते प्रग्रहणान्ति ह्यायते शत योजनम्। यु० २२।६२

यहाँ यन्त्र, सूत्र, दण्ड आदि के प्रयोग के वर्णन से स्पष्ट है कि यह पुल शिल्प विद्या में महा निपुण नल ने बनाया है और इसीलिए इसका नाम 'नल सेतु' है। बन्धुवर, विचारिए क्या यह नल दुमदार बन्दर (पशु) थे ?

(२) अध्यात्म रामायण के इस प्रसंग पर भी विचार करें—

हनुमान जब श्री राम के अयोध्या आगमन की सूचना भरत को देते हैं तो इस प्राणप्रद सन्देश को सुन हर्षित हो भरत कहते हैं—

आलिंगय भरत शीघ्र मारुति प्रियवादिनम्
आनन्दाश्रु जलै सिषेच भरत कपिम्
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिऽहागतः
प्रत्याख्यानस्य ते सौम्य ददामिब्रुवतः प्रियम्
गवां शत सहस्रं च ग्रामणम् च शतं वरम्
सर्वाभरण सम्पन्ना मग्धा कन्यास्तु शोडषा
(अं० रा० १४।५९-६१)

भरत जी ने जैसे ही श्री रामचन्द्र जी के आने का सम्वाद श्री

हनुमान जी से सुना वैसे ही भरतजी ने हनुमानजी को छाती से लगा लिया। आँसुओं की धारा बहने लगी गद्गद होकर अश्रु-जल को नेत्रों से बहाते हुए हनुमान जी से भरत जी पूछने लगे—हे भाई! तुम कोई देवता हो या मनुष्य हो जो मेरे ऊपर दया करके यहाँ आये हो, इस शुभ समाचार के सुनाने के बदले में मैं तुम्हें क्या दूँ? यह कह कर अत्यन्त हर्षित होकर भरत जी ने हनुमान जी से कहा कि यद्यपि इस शुभ सम्वाद से बढ़कर कोई दूसरा सम्वाद नहीं है जिसके बदले मैं कुछ दे सकूँ तथापि मैं तुम्हें एक लाख गाय और अच्छे-अच्छे सौ गाँव और सारे आभूषण से सुसज्जित अत्यन्त सुशील व सुन्दरी, जो देव कन्याओं के समान हैं वह सोलह कन्यायें तुम्हें पुरस्कार रूप में देता हूँ। तुम रामचन्द्र जी के कुशल पूर्वक आने का पूरा सम्वाद मुझे सुनाओ।"

अब आप विचार कीजिये कि भरत जी ने हनुमान जी को सर्व प्रथम मनुष्य या देवता कहा है। कहीं बन्दर या पशु नहीं कहा। यदि हनुमान जी बन्दर होते तो उन्हें एक लाख गऊ देने की क्या आवश्यकता थी? क्या बन्दर भी गऊ रख सकता है। दूसरी वस्तु जो भरत जी ने हनुमान जी को भेंट दी वह है एक सौ अच्छे-अच्छे गांव। भला बताइये कि बन्दर को सारे गांव उत्पात मचाने के लिए. गाँव उजाड़ने के लिए दिए थे? हनुमान जी को राजा बनाकर उन गांवों की रक्षा का भार दिया था? सबसे आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि यदि हनुमान जी पूँछ वाले बन्दर थे तो आभूषणों से सुसज्जित अत्यन्त रूप वती सोलह कन्यायें देने* की क्या आवश्यकता थी? भरत जी का दिमाग खराब हो गया था कि महा सुन्दरी कन्याये बन्दर को भेंट देकर उन बेचारियों की दुर्गत कराते? बन्दर रूपी हनुमान स्त्रियों के लहँगा आदि वस्त्रों को फाड़-फाड़ खेलवाड़ मचा देता। कहीं पृथ्वी में आज तक बन्दरों को ऐसा दान दिया गया है?

---

*हमारे विचार मे यह प्रक्षिप्त है। पर पौराणिक बन्धु ठीक मानते हैं।

अब वाल्मीकिय के एक उदाहरण पर और विचार करें –

राम-रावण-युद्ध के प्रारम्भ में श्री रामचन्द्र की ओर से स्थिर आज्ञा सब सेना को दी गई थी–'इस युद्ध में वानर कभी मानवी भेष न धारण करें। इस हमारे सैन्य का वेष वानर वेष ही सबका रहे। मैं स्वयं, लक्ष्मण और अपने चार मन्त्रियों के साथ विभीषण ये सात ही मनुष्य वेष से युद्ध करेंगे।' यह स्थिर आज्ञा थी। युद्धान्त तक यह जारी रहने वाली थी। इससे स्पष्ट है कि, मनुष्य वानर और राक्षस के वेष ही अलग २ थे. उनके शरीर समान अर्थात् मानवी ही थे।

इस प्रकार आदि से अन्त तक सम्पूर्ण प्रकरण पर तनिक भी गम्भीरता से विचार करने पर प्रकट हो जाता है कि महावीर हनुमान मानव-कुल भूषण पुरुष पुङ्गव थे पशु-बन्दर नहीं।

हनुमान जी को पूँछ वाला पशु मानकर संसार के लोगों ने बहुत धोखा खाया और दुनियाँ को भी धोखे में रक्खा। हनुमान जी को पशु कह कर उनका अत्यन्त निरादर किया गया।

पौराणिक बन्धु, व पुजारी वर्ग हनुमानजी को देवता मानते हैं पूजा करते समय उनका शृंगार होता है, उनमें हनुमान जी को मुकुट पहिनाया जाता है। राम-नाम का तिलक भी लगाया जाता है, माला भी गले में पहनाई जाती है, मस्तक में और दोनों बाहों में तावीज भी बाँधी जाती है, धोती, जाँघिया और दुपट्टा भी पहना देते हैं। कमर में करधनी तथा पाँव में पायल भी डाली जाती है, सूत का यज्ञोपवीत भी पहिनाया जाता है, हनुमानजी के कंधे पर गदा रक्खी जाती हैं जैसा कि बहुधा चित्रों में व पत्थर की मूर्तियों में देखने को मिलता है। अब आप बताइए कि यह सब शृंगार क्यों किया जाता है? क्या इससे बन्दर की शोभा बढ़ जाती है? अतः बन्धु, विवेक से काम लो और महापुरुषों का अनादर करने के पाप से बचो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न– यदि हनुमान आदि बन्दर न थे तो उनको वानर कपि प्लवग आदि क्यों कहा गया है जो कि प्रायः बन्दरों के नाम हैं?

उत्तर—हनुमान आदि के ये सब नाम उनके गुण कर्म के अनुसार हैं। हम इनके अर्थ १. शब्द कल्पद्रुम, २. शब्दार्थ चिन्तामणि, ३ पद्मचन्द्र, ४. शब्दस्तोममहानिधि और ५. वाचस्पत्य बृहद्विधान आदि संस्कृत के प्रतिष्ठित कोषों में से लिख देते हैं। जिन्हें सन्देह हो वहाँ देख लें।

१. प्लवग—के अर्थ हैं नौका व तुलाओं से तैरने वाला क्योंकि प्लव के अर्थ हैं जलतरण-साधन, देखो मुण्डकोपनिषद् १।२।७।

२ वानर के अर्थ हैं—वन के फल-फूल खाने वाला निरामिष-भोजी आर्य। यथा—

'वने भवं वानं। वानं राति गृह्णातेति।'

३ कपि के अर्थ हैं—कं जलं पिवतीति।

कात् आत्मानं पाति रक्षतीति पाति। कम्पते पापात् सदा वा 'कपि'

मद्यादि त्याग, जल पीने वाला। समुद्र जल में भी अपने आत्मा की रक्षा करने वाला तथा सदा पापों से डरने वाला पुरुष कपि हैं और ये सब गुण हनुमान में थे (कपि शब्द का अर्थ सूर्य, शिला रस आदि भी संस्कृत साहित्य में मिलता है।) हनुमान उनका इसीलिए नाम था कि उनकी ठोड़ी कुछ बड़ी और टेढ़ी थी।

कई लोगों के मत में प्लगव के अर्थ लम्बा कूदने वाला है। इस जाति के पुरुष क्योंकि बन्दरों की भाँति बड़ी बड़ी कूदें लगा सकते थे इसलिए इनका नाम प्लवग था। अब भी बहुत से पुरुषों के वीर और कायर स्वभाव को देखकर प्रायः लोग सिंह और गीदड़ की उपाधि से बुला लिया करते है। इसी प्रकार चंचल स्वभाव वालों को आज भी बन्दर कह कर सम्बोधित करते हैं।

पुराणकारों का घिनौनापन

पुराणों में कुछ भी उपयोगी नहीं है, ऐसा तो हमारा कहना नहीं है। उनमें कई शिक्षाप्रद कथायें और आख्यान भी हैं, किन्तु पुराणकारों का मूल दृष्टिकोण इतना विकृत है, जिससे उन्हें निश्चय ही जहर मिले अन्न या मीठे की तरह त्याज्य ही माना जायेगा।
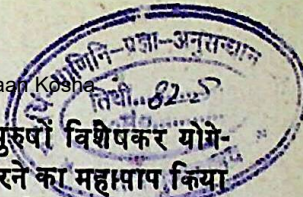
पुराणों में अनेक ऋषि-मुनि और महापुरुषों विशेषकर योगेश्वर श्री कृष्ण को जैसे घिनौने रूप में प्रस्तुत करने का महापाप किया गया है, उसी प्रकार आर्य जाति के महान् गौरव देव पुरुष महावीर हनुमान की उत्पत्ति कथा भी बड़े ही घिनौने रूप में प्रस्तुत की गई है। हम इस पवित्र ग्रन्थ में उन घोर घृणित, महा अश्लील और लज्जा को लजाने वाले सभी प्रकरणोंको उद्धृत नहीं करना चाहेंगे। यहाँ हम संकेत मात्र दे रहे हैं। भविष्य पुराण अति सर्ग पर्व ४।अ० १ में श्लोक ३२ से ४१ में बताया है—

'एक बार शिवजी मान सरोवर पर्वत पर गये जहाँ केसरी नामक वीर की पत्नी अंजना रहती थी। शिवजी का तेज (वीर्य) केसरी के मुँहमें चला गया और उससे कामातुर होकर केसरी अंजना से भोग करने लगे। इसी बीच में वायु ने भी केसरी के शरीर में प्रवेश किया। और वह बलपूर्वक उसके प्रभाव में १२ वर्ष तक अंजना से विषय भोग करता रहा। इस लम्बे मैथुन से अंजना के गर्भ रह गया और एक वर्ष बाद अंजना ने वानर की सी शक्ल वाले हनुमान को जन्म दिया जो कि अत्यन्त कुरूप था। माता अंजना ने उसे त्याग दिया। हनुमान बालक ने बलपूर्वक सूर्य को निगल लिया महादेव जी देवताओं के साथ वहाँ आये और हनुमान को वज्र से मारा परन्तु हनुमानजी ने वज्र से ताड़ित होने पर भी सूर्य को नहीं छोड़ा। तब सूर्य भयभीत होकर बचाओ, बचाओ! 'त्राहि-त्राहि' की पुकार करने लगे। लेकिन हनुमान जी ने सूर्य की दीन दशा त्राहि-त्राहि रोदन पर भी ध्यान दिया और नहीं छोड़ा। सूर्य के रुदन और त्राहि-त्राहि के दीन वचनों को सुनकर रावण आ गया और हनुमान की पूँछ पकड़ कर खींची। इस पर हनुमान ने सूर्य को छोड़ दिया और अत्यन्त क्रोधित होकर रावण से युद्ध करने लगे। एक वर्ष तक रावण से मल्ल युद्ध करते रहे। अन्त में रावण मार खा कर भाग गया।'

अब शिव पुराण के रुद्र संहिता के अध्याय २० के श्लोक ३ से ६ में वर्णित हनुमान की उत्पत्ति कहानी पढ़िये—

एक समय शिव जी ने विष्णु भगवान का मोहिनी रूप देखा तो कामदेव के वश में होकर अपने आप को बेबस पाकर मोहनी रूप विष्णु के साथ भागे। अन्त में मोहनी को न पाकर विवश होकर अपना वीर्य गिराया। तब रामचन्द्र जी के कार्य हेतु शिवजी के संकेत पर सप्तऋषियों ने वीर्य को एक पत्ते पर स्थापित किया और फिर उस वीर्य को अंजना के कान में डाल दिया। अंजना गौतम की लड़की थी। उस कान में डाले वीर्य के प्रभाव से महाबली तथा पराक्रमी हनुमान उत्पन्न हुए। धन्य हो भविष्य पुराण और शिव पुराण के रचियता! जरा आप इन चण्डूखाने की गप्पों पर विचार कीजिए। घिनौनेपन और कृतघ्नता की पराकाष्ठा ! हा, हन्त !!

हे भगवान् ! वह लेखक धन्य है जिसने यह लिखने में तनिक संकोच न किया कि इस पृथ्वी से जो सूर्य १३ लाख गुना बड़ा है एक बच्चे ने जो इस पृथ्वी पर एक गज भूमि में अभी पैदा हुआ, उस सूर्य को जो जमीन से ९ करोड़ मील की दूरी पर है ८४ खरब मील तक तक तप रहा है कैसे पकड़ा और निगल लिया ? किस प्रकार पेट में रखा ? अभी का पैदा हुआ बच्चा इस पृथ्वी के एक भाग में जो अधिक से अधिक ३ फुट का हो सकता है उसने सूर्य को कैसे निगल लिया ? वाह रे लिखने वाले ! वाह रे सुनने वालो !!

बन्धु, इन उद्धरणों पर विस्तृत समीक्षा की अपेक्षा नहीं है और दुर्भाग्य तो यह है कि आज के यूनिवर्सिटी के विद्वान जो विज्ञान के महा पंडित कहे जाते हैं वह बतलाते हैं कि सूर्य पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा है और ९ करोड़ मील की दूरी पर है और ८४ खरब मील तक तप रहा है अनेकानेक ब्रह्माण्डों को सूर्य धारण कर रहा है सूर्य सभी प्राणियों का प्राणदाता है। पर वही प्रोफेसर वही वैज्ञानिक, वही पण्डित घर में स्नान करने के बाद बड़े चाव से हनुमान जी की स्तुति करते और पढ़ते हैं कि—

'बाल-समय रवि भक्ष लियो तब तीनहुँ लोक भयो अंधियारो'

इसमें उनकी सम्पूर्ण विद्वता समाप्त हो जाती है और इस मूर्खता

पूर्ण पाठ के करने में तनिक नहीं हिचकते। जब विद्वान् ही अज्ञानता का प्रचार करते रहेंगे तो भगवान ही कृपा करें, प्रभु सबको सुबुद्धि दे, ताकि संसार में सच्चाई का प्रचार हो। 'धियो यो नः प्रचोदयात् ।'

—:ॐ:—

महावीर हनुमान

(कविवर श्री 'प्रवण' शास्त्री एम० ए० फीरोजाबाद उ० प्र०)

धन्य अंजनी-पुत्र धन्य हे विश्ववन्द्य हे ब्रह्मचारी।
धन्य तुम्हारा पावन जीवन जिस पर जगती बलिहारी॥
ब्रह्मचर्य-व्रत-असिधारा को तुमने समझा कल्याणी।
'अश्माभव' का जाप जपा तो बन गयी काया पाषाणी॥
कहलाये वज्रांग, शिला पर गिरे शिला तुमसे हारी॥१॥
यौवन धन ने पौरुष का प्रासाद मनोहर पाया था।
तरुण त्याग ने शान्त सहोदर संयम को अपनाया था॥
अहंभाव से शून्य सुशोभित विनय शक्ति थे बलधारी।२॥
वाणी-भूषण प्रति भूषण, वर वैदिक विज्ञानी थे।
महामान्य हे, महावीर हे तुम सेवक लासानी थे॥
धर्म-धुरीण धरातल में अनुपम प्रसिद्ध थे उपकारी॥३॥
तुम निर्भय निर्द्वन्द्व निराले नागर सेना-नायक थे।
सूर्यवंश अवतंस राम के आर्य गुणो के गायक थे॥
उदधि-उलंघन लंका-दाहन साहस की हे चिनगारी॥४॥
राम विजय के केतु, सेतु तुम सीता माता रक्षण के।
संजीवन-संज्ञान-दान से जीवन दाता लक्ष्मण के॥
भारत का इतिहास तुम्हारा सदा रहेगा आभारी॥५॥
प्राप्त ईश्वरीय-प्रेम' प्रभा से पूरित जीवन श्री नन्दन।
'तपोभूमि' में अमर रहेगा युग:युगान्त तक अभिनन्दन॥
'प्रणव' काव्य के श्रद्धा शोभित चरण रहेंगे अविकारी॥६।

—:ॐ:—

तुम हुए माँ भारती के

कर्मयोगी ब्रह्मचारी वीरबर हनुमान।
तुम हुए माँ भारती के अमृत पुत्र महान्॥
जन्म से भौतिक जगत् के सुख दिये सब त्याग,
वेद-पाठी बन गये प्रतिमा गई उर जाग।
आपने विधिवत् पढ़े थे व्याकरण के ग्रन्थ,
था तुम्हें भाया सनातन आर्ष वैदिक पन्थ॥
वाल्मीकी शुद्ध रामायण पढ़ो धर ध्यान।
भक्तवर हनुमान की हो जीवनी का ज्ञान॥१॥
आततायी बालि का तुमने दिया नहिं साथ,
राम अरु सुग्रीव का तुमने मिलाया हाथ।
गुप्तचर बन कर करी थी जानकी की खोज,
आपने दिखला दिया था बुद्धि-बल का ओज।
लांघ सागर जानकी की थी बचाई जान।
हो गये कृतकृत्य पा सन्देश राम सुजान॥२॥
अंजनी माँ, पवन पितु को किर दिया धनि-धन्य
शिष्य संज्ञा सफल की बन, ऋषि अगस्त्य अनन्य।
सर्वगुण सम्पन्न थे अद्भुत तुम्हारे कार्य,
शब्द श्रद्धा के सुमन अर्पित तुम्हें हे आर्य!
मैं अकिंचन कर सकूं क्या आपका गुणगान।
कर रहे संशुद्ध जीवन वृत्त 'प्रेम' प्रदान॥३॥
ऋषि मिशन में 'प्रेम जी' का कार्य गुरुता पूर्ण
कर रहा पाखण्ड अरु अज्ञान के गण चूर्ण।
पाठकों को मिल रहा है नित नया उद्बोध,
संस्कृत के वाङ्मय का हो रहा संशोध॥
सत्य और असत्य का अब छन रहा है छान।
'प्रेम जी' की हो 'तपोभूमि' अमर भगवान्॥४॥

— सत्यव्रत आर्य हथपऊ (मैनपुरी)

वैदिक प्रेस, मथुरा।